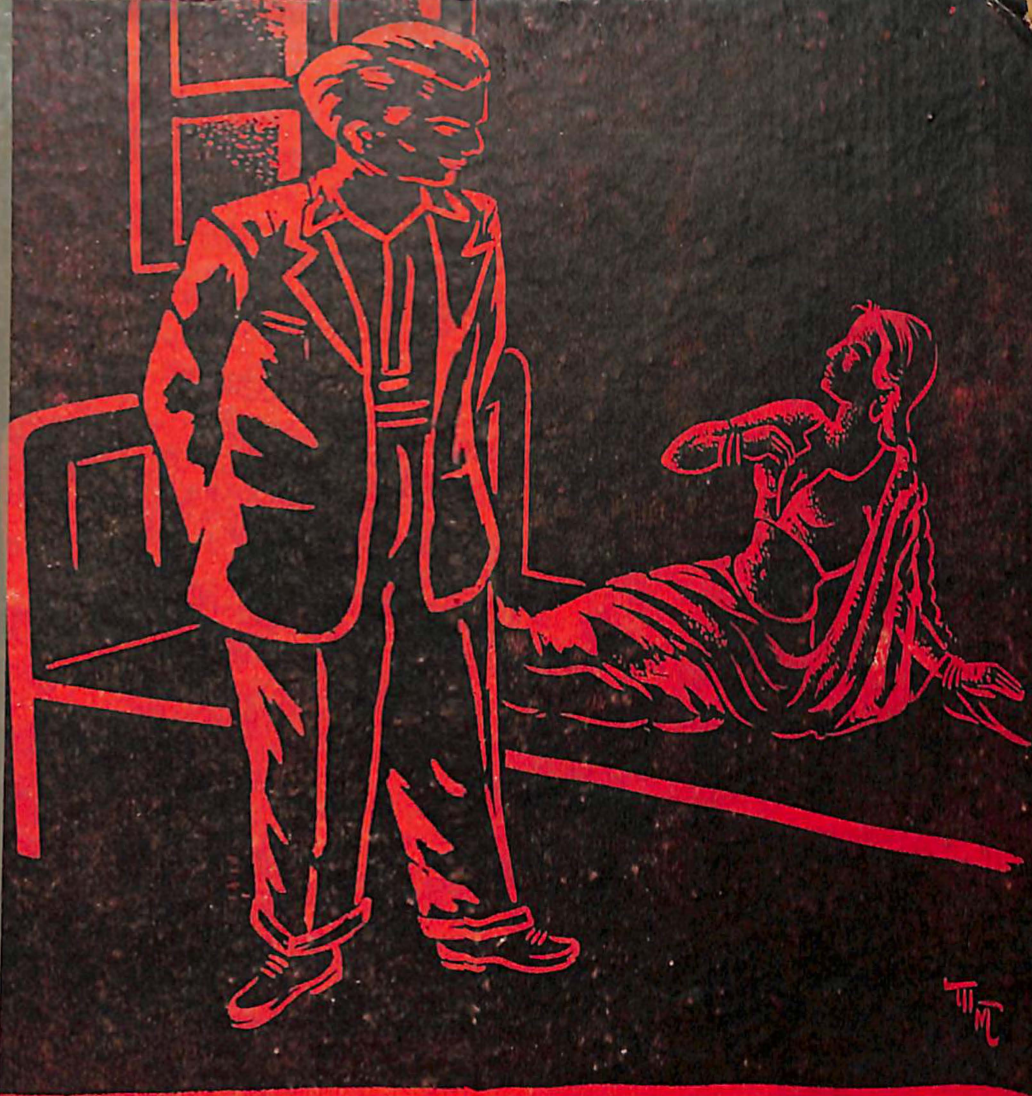

...ों कहा था मैं सुन्दर हूँ?

यशपाल

H
813.31
Y 26 T

H
813.31
Y26T

विप्लव प्रकाशन सं – २९

तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं !

यशपाल

(तीसरा संस्करण)

दिसम्बर १९६५

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ

Library IIAS, Shimla
H 813.31 Y 26 T
00046477

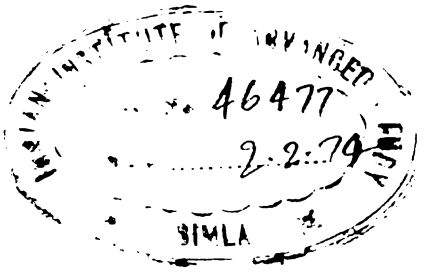

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
46477
2.2.74
SIMLA

H
813.31
Y26T

पुस्तक के प्रकाशन और अनुवाद के सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित हैं।

संशोधित मूल्य
पांच रुपया

साथी प्रेस, लखनऊ में मुद्रित।

समर्पण

जीवित रहने की शक्ति और जीवन संघर्ष
के लिये सामर्थ्य देने वाली जीवन की
आकांक्षाओं को जागरित रख सकने के लिए
यह प्रयत्न है ।

यशपाल

विषय-सूची

कहानी		५
कोकला डकैत		९
हुकूमत का जुनून		१७
चोरबाजारी के दाम	...	२३
गवाही		३१
तगमे की चोट		३९
मिट्ठो के आंसू		४७
तीस मिनिट		५९
अखबार में नाम		६७
असली चित्र		७३
कम्बलदान	...	८५
आबरू		९१
गमी में खुशी	...	९९
तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं !		१०७

कहानी

संसार की समृद्ध भाषाओं में कहानी कला का विस्तार और विकास खूब हो चुका है। परिस्थितियों के कारण हमारा देश और इस देश की भाषायें पिछड़ी रहीं। अब दूसरों के अनुभव से बहुत कुछ पाने का भी अवसर है। ऐसी परिस्थिति में हमारे देश की भाषाओं में भी कहानी कला का विकास दूसरे देशों की अपेक्षा भी तेजी से ही हो रहा है।

जब किसी वस्तु का विकास और विस्तार पर्याप्त रूप में होता है तो उस में भिन्नतायें भी पैदा होने लगती हैं। इन भिन्नताओं के विचार से जो वस्तुयें एक प्रकार और शैली में आ सकें उन के अलग-अलग वर्ग और उपवर्ग बनने लगते हैं। यह बात हमारी कहानी कला पर भी चरितार्थ हो रही है। इस समय हिन्दी और उसी के अन्तर्गत उर्दू में भी अन्य समृद्ध भाषाओं की ही तरह अनेक प्रकार और शैली की कहानियां लिखी जा रही हैं। प्रायः ही इन कहानियों में गठन और शैली का भेद इतना उग्र होता है कि दो भिन्न प्रकार की रचनाओं के लिये एक ही साहित्यिक परिभाषा 'कहानी' मान लेना कठिन जान पड़ता है। ऐसी अवस्था में कहानी की कला को अनुशासन में रखने के लिये कहानी की परिभाषा पर विचार करने की इच्छा असंगत नहीं समझी जानी चाहिये।

कहानी की परिभाषा निश्चित कर लेने और कहानी कला को अनुशासन में रखने के सुझाव का अभिप्राय कहानी कला का इस वर्ग के साहित्य के विस्तार और विकास पर बन्धन लगाना नहीं है, न उस पर किसी वाद या दल का एकाधिकार जमाना है। ऐसे विवेचन का प्रयोजन केवल कला को अधिक परिष्कृत और सार्थक करने की इच्छा ही होना चाहिये।

एक समय कहानी पढ़ी नहीं सुनी जाती थी। ऐसी भी कहानियां थीं जो महीनों चलती रहती थीं उदाहरणतः 'सहस्र रजनी चरित्र।' ऐसी कहानियां अनिवार्यतः एक एक घटना से प्रसूत होने वाली घटनाओं की शृंखलाएं होती थीं। आज घटनाओं की ऐसी शृंखलाओं की रोचकता और कलात्मकता पर सन्देह न करके भी उसे कहानी नहीं कहा जा सकेगा। उस के लिये साहित्य के विभागीकरण ने और भी बड़ा नाम और परिभाषा 'उपन्यास' दे दी है।

आज दिन कहानी की यह परिभाषा या व्याख्या स्वयं ही सर्वमान्य हो गयी है

कि किसी प्रसंग या घटना का कार्य-कारण-सम्बद्ध वर्णन ही कहानी है, जिस से भावोद्रेक हो सके।

लेखक कभी-कभी भावों और विचारों के उद्‌गार से ऐसी भी रचनायें लिखते हैं जिन में तथ्य या भाव को घटना के माध्यम से प्रस्तुत न करके केवल विचारों की शृंखला या शब्द-चित्र के रूप में पेश कर दिया जाता है अथवा कभी किसी विशेष व्यक्तित्व को उस के जीवन की किसी घटना का आधार लिये बिना ही पाठकों से परिचित कराने का प्रयत्न किया जाता है।

इस प्रकार की घटनाहीन, वर्णन-प्रधान रचनाओं की सारगर्भिता और रोचकता के विषय में सन्देह न होने पर भी उन्हें कहानी की व्याख्या और परिभाषा में ही क्यों समेटा जाये ? क्योंकि कोई भी परिभाषा वस्तुओं के वर्ग की समता की द्योतक होती है।

पत्रकारों की भाषा में सभी खबरों को 'स्टोरी' कहा जाता है परन्तु वे कहानी की साहित्यिक परिधि और परिभाषा में नहीं आ सकतीं। इसी प्रकार काबुल या लासा के बाजार का वर्णन या सड़क पर हुये किसी कत्ल के वर्णन या साम्प्रदायिक सहिष्णुता अथवा विश्वशांति के सम्बन्ध में दो यात्रियों की बातचीत को या जीवन वृत्तान्तों को कहानी की परिधि में नहीं समेट लिया जा सकता।

नये-पुराने लेखक अपने विचार और उद्‌गार प्रकट करने के लिये कभी-कभी ऐसी शैली और माध्यम का उपयोग करते हैं जिस में घटना के बिना वर्णन और वार्तालाप ही रहता है। ऐसी रचनाओं को कहानी न मानने पर उन लेखकों को असंतोष भी अनुभव होता है। यह मान लेना आवश्यक नहीं कि कहानी लिखने से बढ़ कर कोई कला है ही नहीं। जैसे कहानी के क्षेत्र का विस्तार हो जाने से उपन्यास और कहानी के क्षेत्र अलग-अलग बंट गये तो इस विभाजन से हानि के स्थान पर विकास में सहायता ही मिली है, उसी प्रकार कहानी के क्षेत्र में कहानी से भिन्न रूप-रंग और शैली की वस्तुओं की रचना हो जाने पर कुछ और वर्गीकरणों को स्वीकार कर लेने से भी हानि न होगी।

शब्द चित्रों, (sketches) गद्य-काव्यों (prose poetry) आपबीतियों, विचार-चित्रों (belle lettre) या कथात्मक निबन्धों (personal essays) को कहानी न मानने से भी उन की रोचकता, कौशल या कलात्मता से इंकार नहीं किया जा सकता। यह कहानी की कला से प्रेरणा पाकर इस कला से ही उत्पन्न हुई कला की नव-विकसित स्वतंत्र शाखायें हैं। नकशों, तालिकाओं या चार्टों को चित्र न मानने से उन की सार्थकता और कौशल में तो सन्देह नहीं होता यों नक्शे के लिये मानचित्र शब्द भी

समानार्थक है। ऐसे ही साहित्य के विभिन्न माध्यमों द्वारा कला-सृजन की प्रवृत्ति निबाहने पर उन्हें कहानी ही कहते जाने की जिद् अनावश्यक है।

कहानी का सप्रयोजन और सार्थक होना तो अनिवार्य है परन्तु सामाजिक कल्याण की कामना से लिखी सभी रचनाओं को कहानी नहीं कह दिया जाना चाहिये।

समय-समय पर विचार-वस्तु के लिये उपयोगी माध्यम चुनने के विचार से मैंने स्वयं शब्द-चित्रों और अनुभूति प्रधान निबन्धों आदि की शैली का उपयोग किया है और उन्हें प्रकाशन की सुविधा के लिये कहानी संग्रहों में सम्मिलित भी कर लिया गया है परन्तु ऐसी रचनाओं को कहानियां मान लिये जाने का आग्रह मैं नहीं कर सकता।

१ जुलाई १९५४ **यशपाल**

——:०:——

कोकला डकैत

'कोकला' जेल की जनाना बैरिक में कैदी जमादारिन थी।

कोकला को विश्वास और सम्मान का यह पद इसलिये दिया गया था कि बैरिक में केवल वही एक स्त्री डकैती के अपराध में सजा पाये हुए थी। कुल स्त्री कैदियों की संख्या अस्सी के लगभग थी। राजनीतिक कैदियों या कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में सजा पाई स्त्रियों की संख्या ग्यारह ही थी। अधिकांश स्त्रियां पति, सौत या सौत की संतान को जहर देकर मार डालने के अपराध में आई हुई थीं। दो-तीन गरीब देहाती स्त्रियां लुटिया-धोती चुरा लेने के अपराध में सजा पाये थीं। एक स्त्री शायद मालकिन का जेवर चुरा लेने के जुर्म में सजा भुगत रही थी।

समाज में तो साधारणतः दूसरे सब अपराधों की अपेक्षा कत्ल या डकैती करने वाले के प्रति ही सब से अधिक घृणा या भय प्रकट किया जाता है पर जेल में दूसरी ही नैतिकता चलती है। हम लोग साधारणतः जिन अपराधों की उपेक्षा कर जाते हैं, जेल के प्रबन्ध की दृष्टि से वही अपराध अधिक आशंकाजनक माने जाते हैं। अंग्रेजों ने सात समुद्र पार से अपनी केवल मुट्ठी भर बिरादरी लाकर डेढ़ सौ वर्ष तक इस देश की चालीस करोड़ जनता पर सफलता से शासन कर दिखाया था। उनकी इस राजनीति का रहस्य इस देश के लोगों के सहयोग से ही इस देश का शासन चलाना था।

अंग्रेजी सरकार ने शासन की यही नीति जेलों में भी लागू की थी, अर्थात् जेल में बन्द डेढ़-दो हजार कैदियों को नियंत्रण में रखने के लिये, उन कैदियों में से ही कुछ लोगों को चुनकर काम चला लेना। प्रबन्ध में सहायता के लिये चुन लिये गये कैदियों को जेल विभाग के दूसरे नौकरों की तरह तनखाह नहीं देनी पड़ती। कैद की मियाद में कुछ छूट, कठिन परिश्रम से बचत और दूसरी कुछ सुविधायें देकर ही इन कैदियों को प्रबन्ध के लिये आवश्यक अमले में मिला लिया जाता है। ऐसे कैदियों को 'कैदी

पहरेदार' (C. N. W.) 'कैदी निरीक्षक' (C. O.) 'कैदी-मुहर्रिर' (C. R.) और 'कैदी जमादार (C. W.) के अवैतनिक पद दे दिये जाते हैं।

जेल के कायदे के अनुसार कुछ विशेष अपराधों के कैदियों को ही ऐसे पदों के लिये चुना जा सकता है। बहुत से अपराधों के कैदी भरोसे योग्य नहीं समझे जाते। उदाहरणतः राजनीतिक बन्दी या अच्छे पढ़े-लिखे कैदी विश्वास योग्य नहीं समझे जाते। कोकला यदि अपना नाम 'कोकिला' बता सकती तो उतनी विश्वास योग्य न होती। अच्छे पढ़े-लिखे किसी कैदी को जेल के दफ्तर में ड्यूटी देना उचित नहीं समझा जाता। जालसाजी (दस्तखत की नकल) या जेब काटने के अपराध के लिये जेल भेजे गये कैदी भी भरोसे लायक नहीं माने जाते। फ़ौजदारी, कत्ल या डकैती के लिये सजा पाये लोग ही जेल के प्रबन्ध में सहयोग के लिये विश्वासपात्र समझे जाते हैं। नैतिकता या उपयोगिता के इसी मापदण्ड के अनुसार ही कोकला जमादरिन बन गई थी।

यों तो पुरुषों की ही तरह स्त्रियों से भी सभी अपराधों की आशंका की जा सकती है परन्तु स्त्री के डाकू होने की बात सुनकर कुछ विस्मय जरूर होता है। सोचा, कोकला ने किसी औरत या बच्चे से कोई कपड़ा या जेवर छीन लिया होगा। इसके अतिरिक्त वह और क्या डकैती कर सकी होगी ?

पूछने पर कोकला टाल देती—"हां बीबी जी, तुम भी क्या कहती हो। तुम्हीं जानो, औरत जात क्या डकैती करेगी ?"

इस उत्तर से समाधान नहीं हुआ। सुना है पुरुष कैदियों का भी यही तरीका है। कैदियों से उनके अपराध की बात पूछने पर प्रायः ही उत्तर मिलता कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया; अदावत के कारण उनके खिलाफ गवाही गढ़ कर उन्हें फंसा दिया गया है। कोकला ने आरम्भ में भी ऐसा साफ झूठा नहीं बोला इसलिये उसका मामला जानने की और भी उत्सुकता थी।

उस रात कोकला रौंद (round) की ड्यूटी पर थी। दिन भर की घुटन के बाद रात में रिमझिम पानी बरस रहा था। वह कम्बल ओढ़े और हाथ में लालटेन लिये रौंद लगाती हुई मेरी कोठरी के सामने से गुजरी। उसकी ड्यूटी थी कि रात में कोठरियों और बैरिकों के चारों ओर घूम-घूम कर चौकसी रखे कि कोई कैदिन भागने का यत्न तो नहीं कर रही। मेरी लालटेन जलती देखकर उसने जगते होने का अनुमान कर पुकार लिया—"बीबी जी, राम-राम !"

रात में कुछ देर पढ़ सकने के लिये मुझे एक हरीकेन लालटेन दे दी गई थी। पुस्तक पढ़ने का यत्न कर रही थी पर मन नहीं लग रहा था। कोकला को उत्तर

दिया—"आओ जमादारिन, खामुखाह भीग क्यों रही हो ? इस पानी में दीवार फांद कर कौन भागी जा रही है ?"

"बीबी जी, जरा चाबी पूरी कर आऊं, आकर बैठती हूं।" कोकला ने उत्तर दिया।

कैदियों और कैदिनों को जमादार बनाकर भी सरकार उनका पूरा भरोसा नहीं कर लेती। इन जमादारों या पहरेदारों की कमर पर पेटी में एक घड़ी बंधी रहती है। जेल की दीवारों और इमारतों में स्थान-स्थान पर जंजीरों से चाबियां बंधी रहती हैं। पहरेदार इन चाबियों को अपनी घड़ी में लगाते रहते हैं। सुबह घड़ी के भीतर लगा कागज खोल कर देख लिया जाता है कि रौंद ठीक ढंग से लगाई गई थी या पहरेदार रात में ऊंघता रहा था। कोकला चाबी पूरी करके कुछ ही मिनट में लौट आई। वह मेरी कोठरी के जंगलेदार बन्द दरवाजे के बाहर अपना लहंगा समेट कर जमीन पर ही बैठ गई थी। मैंने जेल का कम्बल सीखचों से बाहर धकेलते हुए कहा—"हाय, जमीन पर क्यों बैठती हो ? कम्बल ले लो !"

मेरे सौजन्य से संतुष्ट होकर कोकला ने उत्तर दिया—"मालकिन, यहां उम्र भर ऐसे ही उठते-बैठते रहे हैं। अपना कम्बल क्यों खराब करती हो। ठंडा-ठंडा तो और अच्छा लग रहा है। गरमी के मारे प्राण निकल रहे हैं।"

"कोकला, तुम्हारा घर तो पहाड़ पर जान पड़ता है।" मैंने उसके उच्चारण से अनुमान प्रकट किया, "तुम्हें तो बरेली की गरमी बहुत सताती होगी ?"

"हां बीबी जी, नैनीताल की हूं।" कोकला ने समर्थन किया, "आपने तो देखा होगा नैनीताल ? आप जैसे बड़े लोग गरमी में नैनीताल जाते हैं।"

"हां, हां देखा क्यों नहीं। हमारी बेटी वहीं स्कूल में पढ़ती है। हर साल जाते ही थे। क्या बतायें; इस साल अंग्रेजों से लड़ाई में जेल काट रहे हैं।"

"हां मालकिन और क्या ?" कोकला ने सहानुभूति प्रकट की, "नहीं तो जेल आप जैसे लोगों के लिये थोड़े ही हैं। आप लोगों को क्या कमी है जो जेल में आयें। आप राजा लोग हैं। राजा, राजा की ही लड़ाई हो सकती है।"

उसकी बात से झेंपकर बात बदलने के लिये पूछ लिया—"तुम्हारा घर नैनीताल से कितनी दूर है ?"

"दूर क्या, खास नैनीताल की हूं मालकिन !" कोकला ने गर्व से उत्तर दिया।

"खास नैनीताल की ?" नैनीताल में उसका घर किस जगह है, यह जानने के लिये विस्मय प्रकट किया।

"हाँ बीबी जी, खास नैनीताल में," उसने समझाया, "कालाखान जानती हो न ! वहीं नीचे ही हम लोगों की बखरी (छप्परों की बस्ती) है।"

"क्या काम होता है तुम लोगों के यहां ?"

"काम क्या; बीबी जी, हम लोग घास-लकड़ी का काम करती हैं। मर्द लोग कुली-उली का काम करते हैं। शीज़न (सीजन) में रिक्शा, डांडी ढोते हैं, जाड़ों में पत्थर ढोते हैं।"

"हूं, मिला-जुलाकर गुजारा चल जाता होगा।" मैंने सहानुभूति प्रकट की।

"मालकिन, गुजारा ही चल जाता तो यहां क्यों आ मरती ?" कोकला ने निस्संकोच कह दिया।

"तो क्या तुमने सचमुच डकैती की थी ?" मैंने अविश्वास प्रकट किया।

"अब जो समझ लो; झूठ बोलने से क्या बन जायगा मालकिन ?" कोकला ने एक गहरी सांस छोड़ी, "अब तो सजा कट ही गई।"

"डकैती में और लोग भी तुम्हारे साथ रहे होंगे ? अकेली तुमने क्या किया होगा ?" उसे उत्साहित करने के लिये प्रश्न किया।

बरसाती रात के एकान्त में कोकला का मन भर आया। अब तक जिस रहस्य को वह टालती आ रही थी, वह उसके गले से उमड़ने लगा। उसने बताया:—

कोकला की बिरादरी की स्त्रियां नैनीताल के आस-पास के बीहड़ ढलवानों पर, घने जंगलों से घास और लकड़ी बटोर कर नैनीताल के बाज़ार में बेचती हैं। भारी से भारी बरसात में भी उनका यह काम चलता ही रहता है। इन लोगों के लहंगे और ओढ़नी चौमासे भर गीले ही बने रहते हैं। याद आ गया, यदि नैनीताल की सुथरी सड़क पर घास वाली पास से गुजर जाये तो नाक पर रूमाल रखे बिना नहीं सरता। शायद इसीलिये म्युनिसिपैलिटी ने मुख्य सड़क के सामानान्तर बोझ ढोने वालों और पशुओं के लिये दूसरी सड़क बनवा दी है।

सब मुसीबत झेलकर भी घास और लकड़ी के दाम इतने कहां मिलते हैं कि दोनों जून बाल-बच्चों के लिये रोटी-दाल चल जाये। घास और लकड़ी के कमर तोड़ बोझ के दाम सात-आठ आने से अधिक नहीं मिलते। वह भी कितने दिन ? जहाँ आसाढ़ की बौछारें शुरू हुईं और नैनीताल में कोहरा भरने लगा, मैदानों से आये सैलानी साहब लोग भाग चलते हैं। इन साहब लोगों का शौक पूरा करने के लिये रामपुर और बरेली से आये घोड़े वाले भी, अपने जानवर लेकर लौट जाते हैं। घास और लकड़ी की बिक्री कम हो जाती है। उन स्त्रियों का यही रोजगार है, उनके लिये दूसरी जगह भी नहीं, वे क्या करें ? गुजारा चलाना ही पड़ता है। उन्हें कुछ घास-लकड़ी की बिक्री से, कुछ सूनी जंगलाती सड़क पर सैर के लिये आने-जाने वालों से मिल जाता है।

सूनी जंगलाती सड़क पर सैर के लिये निकलने वाले लोगों से कुछ मिल जाने का मतलब भीख मिल जाना नहीं है। नैनीताल जाने-आने वाले उस सड़क की चर्चा कनखियों से करते हैं। सड़क पर घासवालियां अक्सर दिखाई दे जाती हैं। शौकीन लोग उन्हें देखकर साँस-खंखार देते हैं। घास वाली के मुस्करा देने पर दो-तीन चवन्नी में सौदा तय हो जाता है। कभी घास वाली के पेड़ों या घास की आड़ में रहने से सैलानियों की नजर उस पर न पड़े तो घास वाली ही सड़क पर कंकर फेंक कर या सीटी बजाकर ध्यान खींच लेती है। ऐसा संकेत न समझ पाने वाले नये लोगों से, यह औरतें सड़क पर आकर सिगरेट या बीड़ी मांग बैठती हैं। मांगने का ढंग काफी कौतुर्कपूर्ण होता है।

इन औरतों का सुविधा से दो-तीन चवन्नियां कमा लेने का प्रलोभन नैनीताल की छावनी के अधिकारियों के लिये कठिन समस्या बन गया था। इस सड़क पर यह रास्ता शौक, घर-बार से बिछुड़े सिपाहियों और खास तौर पर उच्छृंखल गोरों के लिये अदमनीय आकर्षण बन गया था। वे छिप-छिप कर वहाँ जाते और दो-तीन चवन्नी में शौक पूरा कर रोग घाते में ले आते इसलिये सरकार को इन स्त्रियों की चिन्ता के कारण नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य के बहादुर सिपाहियों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये इस सड़क पर देखभाल रखनी पड़ती थी। जगह-जगह नोटिस लगा दिये गये थे—यहाँ बत्तमीजी करने वालों को सजा दी जायगी।

उस जंगलाती सड़क से घास-लकड़ी लाने वाली अधिकांश औरतें जैसे गुजारा करती थीं, वैसे ही कोकला का भी गुजारा चलता था। एक दिन बोझ ढोते समय उसका आदमी ठोकर खा गया था। उसके पांव का अंगूठा पक गया। वह पांव की पीड़ा से कई दिन तक घर बैठा रहा। कोकला की कमाई पर ही तीनों बच्चों और मर्द-औरत का निर्वाह हो रहा था; तिस पर लड़ाई के ज़माने की मंहगाई। कोकला ने जल्दी-जल्दी घास काट, बोझा बांध, एक पेड़ के तने से टिका दिया और आते-जातों की प्रतीक्षा में बैठी थी। पिछले दो दिन से उसे सड़क पर कुछ न मिला था। पैसे की कमी से वह परेशान थी। बनिया दो-तीन रुपये से अधिक उधार भी नहीं देता था। पिछली रात बच्चों और मर्द को यों जैसे-तैसे कुछ खिला दिया था पर स्वयं भूखी ही रह गई थी।

कोकला ने सड़क पर एक आदमी आता देखकर ओठों से धीमी सी सीटी बजाई। आदमी बिना ध्यान दिये चला आ रहा था। वह सड़क पर आ गई और उस आदमी से बीड़ी मांगी। कोकला का चेहरा यों भी आकर्षक नहीं था। शायद उस दिन पिछली रात से भूखी होने के कारण वह और भी मुर्झाई हुई लग रही थी। आदमी ने मुस्करा-

कर एक बीड़ी उसकी ओर फेंक दी पर रुका नहीं। कोकला खिसियाकर रह गई। कुछ ही देर में दूसरा आदमी दिखाई दिया। कोकला ने फिर साहस किया। उसके समीप जा मुस्कराकर होठों पर हाथ रख बीड़ी के लिये संकेत किया।

यह आदमी दूसरे ढंग का था, 'हिश्त !' उसने कोकला को डांट दिया और चलता चला गया। कोकला की निराशा दुस्साहस में बदल गई। वह आपे से बाहर हो गई थी। उसने बगल में दबा घास काटने का हंसिया आदमी को डराने के लिये उठाकर धमकाया—"हिश्त क्या ?···शाले अभी निकाल दो चवन्नी, नहीं तो अभी तेरा मूंड काटकर जंगल में फेंक देती हूँ ?"

आदमी सहम गया। यदि वह लड़ने के लिये तैयार होकर मूंड न भी कटने देता तो हंसिये से एकाध खोंच लग जाना भी तो कोई अच्छी बात न थी। एक अठन्नी के लिये इतना जोखिम झेलना उस आदमी को उचित न जंचा होगा। उसने चुपके से अठन्नी निकाल कर कोकला की ओर फेंक दी।

उस समय तो कोकला की समस्या हल हुई ही पर उसे जान पड़ा कि उसे बहुत अच्छा उपाय सदा के लिये मिल गया। हंसिया दिखाकर धमकाने से दो चवन्नी आसानी से मिल सकती हैं, तो उसके लिये कांटों और कीचड़ से भरी जंगल की जमीन पर परेशानी सहने की क्या जरूरत ? कुछ दिन वह ऐसा ही करती रही। इस तरीके में आदमी की खुशी नाखुशी का भी सवाल न था।

कोकला ने कभी नहीं सोचा कि अठन्नी लेने का नया ढंग उसने अपना लिया था, उसका प्रभाव कितनी दूर तक पहुँच रहा होगा। वह अपनी सफलता के भरोसे नये ढंग पर चली जा रही थी। अन्तिम दिन भी एक आदमी की सीटी सुनकर वह सड़क पर आ गई। उस आदमी के बीड़ी हिलाने के प्रस्ताव पर कोकला ने उसे हंसिये से धमका कर दो चवन्नी मांगी।

इस आदमी ने ऐसा व्यवहार किया मानो बहुत डर गया हो।

"अच्छा देता हूँ" कह कर वह भीतर-बाहर की की जेबें टटोलने लगा। इधर-उधर देखता जा रहा था। जेब से पैसा निकालने के बहाने उसने एक तमंचा निकाल कर कोकला की छाती पर रख दिया और गाली देकर हंसिया जमीन पर डाल देने का हुक्म दिया।

कोकला हक्की-बक्की रह गई।

आदमी ने बहुत ज़ोर से एक तमाचा भी कोकला के मुंह पर जड़ दिया और जेब से सीटी निकाल कर जोर से बजा दी। दो और आदमी भागते हुए आ गये।

कोकला हैरान रह गई। पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया था।

कोकला गिड़गिड़ाई, रोई, सिपाहियों के पांव छुए परन्तु सिपाही किसी तरह नहीं माने । उसे थाने ले जाकर हवालात में बन्द कर दिया गया । 'घासवाली डकैत' की रपट लिखाने वालों को थाने में बुलाया गया । कोकला पहचान ली गई । कोकला द्वारा लूटे जाने वाले पीड़ितों में दो गोरे सिपाही भी थे । मुकद्दमा चला, कोकला को तीन बार डकैती करने के अपराध में चार वर्ष के कठोर कारावास की सजा दे दी गई ।

अपनी बात सुनाकर कोकला ने गहरी सांस लेकर चिंता प्रकट की—जेल की सजा पूरी कर वह छूट भी जायगी तो कहाँ जायगी ? जाने उसके आदमी ने और ब्याह कर लिया हो । उसके तीनों बच्चों का क्या हुआ होगा ? उसकी बिरादरी के लोग क्या कहेंगे ?

कोकला उठ कर दूसरी रौंद लगाने चली गई । मैं अठन्नी की डकैती की बात सोचती रही ।

अठन्नी की डकैती के लिये चार वर्ष की सज़ा और कोकला के बच्चों को मां के अपराध के लिये, मां छिन जाने की सज़ा । पर डकैती तो डकैती है, चाहे आठ पैसे की हो या आठ लाख रुपये की । कोकला के जोर-जबर से किसी से आठ आने छीन लेने के अपराध की उपेक्षा कोई भी सरकार कैसे कर सकती है ? लोगों की सम्पत्ति की रक्षा कर अमन कायम रखना ही सरकार का काम है लेकिन कोई भी पुरुष व्यक्तिगत रूप से अपनी स्त्री का किस ढंग से आठ आने ले लेना अधिक अक्षम्य समझेगा ? हंसिये के जोर से या···? परन्तु व्यवस्था की दृष्टि से तो सम्पत्ति और अमन की रक्षा ही अधिक महत्वपूर्ण है ।

कोकला का हंसिये के जोर से सड़क पर अठन्नियां छीनना वास्तव में डकैती थी परन्तु अठन्नी के जोर से बीसियों बार कोकला से जो छीना गया, वह कानून की नजर में क्या था ?

उसकी तो कोकला शिकायत भी नहीं कर सकती थी·····।

हुकूमत का जुनून

आत्म-सम्मान निबाहने के लिये मैं यही उचित समझता हूं कि किसी से ऐसी सौजन्यता स्वीकार न करूं जिसका प्रतिदान मैं नहीं दे सकता। ऐसे व्यवहार के कारण कालिज में कई सहपाठी मुझे कुछ अभिमानी या असामाजिक ही समझ बैठे थे। दूसरों के एहसान उठाने की अपेक्षा मैं ऐसी गलतफहमी के बोझ को ही बेहतर समझता हूं।

बज्रबहादुरसिंह के साथ अपना यह नियम निबाहने में अड़चन होती थी बल्कि निबाह ही नहीं पाता था। उसका ढंग कुछ ऐसा ही था। सामन्ती परम्परा की संस्कृति की सूक्ष्मता, जिसे अनुभव तो किया जा सकता था परन्तु पकड़ में न आती थी। एक प्याला चाय पीने के लिये कहना हो तो वह कहेगा—आओ यार, यह चाय तुम्हें अच्छी तो क्या लगेगी, पर क्या है पी डालो। सिनेमा साथ ले जाना हो तो—भैय्या, तुम्हें खलेगा तो सही, पर जरा साथ दो; बातचीत में दोनों का समय कट जायगा।

इस शालीनता के साथ बज्रबहादुर के कुछ व्यवहार ऐसे भी थे जिन्हें ठकुरैती प्रदर्शन के सिवा और कुछ नहीं समझा जा सकता था। उदाहरणतः बोर्डिंगहाउस में रहने के बजाय तीन कमरों का एक फ्लैट लेकर, दो नौकरों और भोजन बनाने वाले महाराज के साथ रहना। कुछ दिन तो वह मोटर भी रखे हुए था। मोटर न रहने पर कहीं जाने से पहले नौकर को भेजकर ठीक कमरे के सामने टांगा मंगा लेता था। उसके भिन्न-भिन्न व्यवहारों में मैं कभी कोई सामंजस्य नहीं पा सका। उसकी निश्छल आत्मीयता को ठुकराते भी न बनता था। उसके और अपने व्यवहार के अन्तर में बड़ी खाई से संकोच भी बना रहता था।

बज्रबहादुर की कई बातें याद हैं लेकिन उसके चरित्र की गुत्थी की गांठ के रूप में एक छोटी सी बात सबसे अधिक याद है; वह है उसका सड़ी से सड़ी गरमी में भी सदा कमरे के भीतर दरवाजे और खिड़कियां बन्द करके सोना। इलाहाबाद, लखनऊ में ऐसा नियम निबाहना कितना कठिन है, यह बताने की जरूरत नहीं।

बिजली का पंखा बेशक चलता रहे पर खुले आकाश के नीचे सोने का सा सुख तो उससे नहीं मिल सकता। वह सदा बंद कमरे में ही सोता। आन्तरिकता हो जाने पर मालूम हुआ कि तकिये के नीचे भरा हुआ पिस्तौल भी रखा रहता था। मध्य-प्रदेश की एक रियासत का ठिकानेदार होने के कारण उसके पास पिस्तौल का लाइसेंस था। बन्द कमरे के बाहर उसका नौकर दरवाजे पर मौजूद रहता।

वज्रबहादुरसिंह के यहां जितने साथी पहुंच जायें, वह सदा उदारता से जल-पान कराता परन्तु स्वयं कभी दूसरे के यहां पानी भी उसने नहीं पिया। मैं इसे उसका अहंकार ही समझता था परन्तु रहस्य खुलने पर उसके प्रति करुणा या उसकी कायरता के लिये ग्लानि ही अनुभव हुई। कोई पुस्तक मांगने या लौटाने के लिये उसके यहां गया था। वह उसी समय बाहर से लौटा था, बेवख्त खाने बैठा था।

बज्रबहादुर भोजन के लिये कमरे में एक ओर आसन पर बैठा था। थाल सामने था। उसके सामने उसकी रसोई बनाने वाला महाराज फर्श पर उकड़ू बैठा था। एक पत्तल उसके सामने भी थी। वज्रबहादुर अपने थाल में परोसी प्रत्येक वस्तु का एक-एक ग्रास महाराज के सामने पत्तल पर रखता जा रहा था और महाराज उसे निगलता जा रहा था। भोजन परोसा जा चुकने के बाद मालिक का स्वयं रसोइये को चखाने का ढंग कुछ विचित्र सा लगा। वज्रबहादुर के चेहरे पर आ गई हलकी झेंप ने समस्या हल कर दी। जानकर दुख हुआ कि इस आदमी को अपने रसोइये का भी विश्वास नहीं। इसे प्रतिक्षण विष खिला दिये जाने की आशंका बनी रहती है। ओफ ! कितना भीरू है ?

लेकिन बज्रबहादुर भीरू नहीं था। बोर्डिंग में आते ही जिस घटना से मेरा ध्यान विशेष रूप से उसकी ओर गया था, वह भी भूल नहीं सकता। चौथे पहर हम कई लोग कालिज से बोर्डिंग लौटे थे। वज्रबहादुर भी बातचीत करता साथ ही चला आया था। घोष अपने कमरे के सामने रुक गया। हम लोग आगे बढ़ गये। सहसा घोष की भयार्त चीख बहुत जोर से सुनाई दी।

हम लोगों ने पलट कर देखा। घोष ने कमरे का ताला खोल कर किवाड़ों को भीतर धकेला ही था कि चीख कर पीछे कूदने से गिरते-गिरते बचा। दूसरे कई लड़के भी दौड़ आये। घोष की घिग्घी बंध गई थी। देखा कि उसके कमरे के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा काला सांप कुण्डली बांधे, फन को हाथ भर उठाये युद्ध की मुद्रा में बैठा है। कोबरा भाग जाने का यत्न न कर दरवाजे के बाहर खड़ी भीड़ को फुफकारों से धमका रहा था।

कुछ लड़के दौड़कर हाकियां और लाठियां ले आये। कोई क्रिकेट खेलने का चौड़ा

वेट और कई विकटें ही उठा लाये । यह सब अस्त्र-शस्त्र जुट जाने पर भी आगे बढ़ कर प्रहार करने की हिम्मत किसी को न हो रही थी । यही बुद्धिमानी समझी गई कि हिम्मत करके दरवाजा फिर मूंद दिया जाये; कोबरा कमरे की मोरी से पिछवाड़े बाग में निकल जायेगा ।

वज्रबहादुर ने विरोध किया—"कोबरे का बाग में रहना क्या कम खतरनाक है ? किसी भी समय किसी का पांव उस पर पड़ सकता है । सांप को देख लिया है तो छोड़ देना ठीक नहीं ।" उसने अपनी कमर से छोटी पिस्तौल निकाल ली और बोला, "कहो, मैं इसके फन पर अभी गोली मार दूं !"

दूसरे साथियों ने इस दुस्साहस का बहुत विरोध किया । कोबरा अपना फन लगातार हिला रहा था । आशंका थी कि निशाना चूक जाने पर सांप प्रतिहिंसा में चोट करेगा, तब दो या चार जितने भी लोग उसकी झपट में आ जावें···?

बज्रबहादुर ने पिस्तौल खिलवाड़ से हाथ में उछालते हुए उत्तर दिया—"आप लोग जितनी दूर सुरक्षित समझें, हट जावें । मेरा निशाना अगर चूक गया तो मैं सांप से समझ लूंगा ।·····यह हाकी तो है ही ।" किताबें एक ओर रख कर उसने दूसरे हाथ में एक हाकी और ले ली ।

सब लोग बरामदे से नीचे कूद कर सहन में तीस-चालीस कदम दूर जाकर बज्रबहादुर और कोबरे का युद्ध देखने के लिये खड़े हो गये । सब के कलेजे धुक-धुक कर रहे थे । बज्रबहादुर हाथ में पिस्तौल साधे कमरे में चला गया । वह कोबरे के बहुत समीप हो गया । कोबरे के फन और पिस्तौल थामे उसके हाथ का अन्तर गज भर ही रह गया होगा । कोबरा फुफ़कारता हुआ अपने फन को हिला रहा था । वज्रबहादुर का हाथ भी फन की गति के साथ ही हिलता जा रहा था । हम लोगों के कलेजे मुंह को आ रहे थे कि कोबरा किसी भी समय झपट कर बज्रबहादुर के हाथ पर काट ले सकता है ।

सहसा पिस्तौल के चलने का शब्द सुनाई दिया और बज्रबहादुर शांति से कमरे के दरवाजे के बाहर आ गया ।

कोबरा बड़ी छटपटाहट में उछल-उछल कर अपने ही चारों ओर बल खाये जा रहा था ।

हम लोग दौड़ कर वहां पहुंचे । कोबरे का फन कट कर छितरा गया था । फन को बारबार फर्श पर पटकने से खून के छींटे उड़ रहे थे । फर्श पर भी बहुत सा खून फैल गया था । बज्रबहादुर फिर कमरे के भीतर गया और कोबरे की छटपटाती पूंछ को पकड़ कर उसे फुर्ती से एक ही झटके से सहन में फेंक दिया । पिस्तौल को बहुत सहज

भाव से कमर में खोंसते हुए उसने बहुत सहज भाव से बहुत सहज भाव से ही कहा—"अच्छा, चलते हैं।" जैसे कुछ हुआ ही न हो। भीरुता और दुस्साहस का अदभुत मेल था।

इस अद्भुत मेल का रहस्य भी उसके ही मुंह से मालूम हुआ। अगस्त के दिन थे। ऐसी सड़ी गरमी पड़ रही थी मानो शरीर से पसीने की जगह तेल निकल रहा हो। ऐसी अवस्था में रात में पढ़ाई क्या होती ? वज्रबहादुर के यहां उसका बिजली का टेबल पंखा लगाये ब्रिज का खेल हो रहा था। आठ बजे आखिरी नम्बर खत्म करके उठे। चलते समय पंखे का फर्श पर पड़ा तार मेरे पांव में कुछ ऐसा उलझ गया कि मैं तो गिरते-गिरते बचा पर पंखा स्टूल से नीचे जा पड़ा और पंखे की ढले हुए लोहे की खोपड़ी दो टुकड़े हो गई।

मैं तो झेंप के मारे मर गया परन्तु वज्रबहादुर मानो मुक्ति का श्वास ले कर बोला—"बहुत अच्छा हुआ, इस साले से छुट्टी मिली। इतना शोर करता है यह पंखा कि नींद हराम हो जाती है।" और फिर अनुरोध सा किया, "मोती भैय्या, जरा बाजार तक साथ चलो तो एक पंखा लेते आवें, नहीं रात में परेशानी होगी।"

इनकार कैसे करता ?

वज्रबहादुर का नौकर एक टांगा ले आया।

हम लोग नया पंखा खरीद लाने के लिये सिविल लाइन की ओर चल दिये। एलगिन रोड और कैनिंग रोड पूरी छान डाली। पान-बीड़ी, मिठाई की दुकानों और शराबखानों के सिवा सब कुछ बंद हो चुका था। चौक तक पहुंचे तो वहां भी अधिकांश बाजार बन्द हो चुका था; पंखा न मिला।

लौटते समय मैंने सुझाया कि इंगलिश के नये लेक्चरार तुम्हारे मित्र रावत ने कुछ ही दिन पहले पंखा खरीदा है। बेतकल्लुफी है। वह बन्द कमरे में थोड़े ही सोता होगा; रात भर के लिये उसी से पंखा मांग लें।

"उहूं" वज्रबहादुर ने दो टूक इनकार कर दिया, "नहीं जी, क्यों किसी साले का एहसान लें। एक रात न सोये, न सही !"

शेष रास्ते भर मैं उसे समझाने की कोशिश करता रहा कि वह अजीब आदमी है। बाहर सोने में क्या खतरा हो सकता है ? बोर्डिंग भर के लड़के सोते हैं। कौन उसकी जान के पीछे पड़ा है ? उस दिन उसके सो न पाने की सम्भावना का उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर अनुभव कर उसे बाहर सोने के लिये उत्साहित कर देना चाहता था।

मेरे बार-बार समझाने पर वज्रबहादुर बोला—

"तुम कहते हो, खतरा क्या है ? कौन मेरी जान के पीछे पड़ा है ? अरे, हमारे परिवार के लोग जिन्दा हैं यही क्या कम विस्मय है ? यह सिर्फ अपनी हिम्मत और चौकसी की वजह से, नहीं तो लोग दस-दस बार हमारा खून करके भी तृप्त हो जायें तो वही बात समझो । हमारी अड़तालीस गांव की ठिकानेदारी में कौन हमारा दुश्मन नहीं है ? हमारे घर के लोगों ने कभी न कभी किस घर के लोगों को बेइज्जत या तंग नहीं किया या सजा नहीं दी ? भैय्या, हुकूमत यों ही नहीं चलती । मामूली लोगों का तो क्या, सैकड़ों राजपूत ठाकुरों को भी उनकी हेकड़ी तोड़ने के लिये ही जूते लगवा दिये होंगे । उनकी घर की औरतों को पकड़ मंगवाया होगा कि उनकी आंख नीची रहे । जागीर का कौन घर ऐसा होगा जिसकी बहू-बेटी ठिकाने पर न बुलाई गई होगी ? कितनी बार तुमसे कहा है, एक बार हम लोगों के यहां चल कर दस-पांच दिन रहो, तभी कुछ समझोगे । हमारे यहां पुराना कायदा चला आ रहा है कि मेहमानों को अपनी कोई चीज–बरतन-भांडा व्यवहार में नहीं लाने दिया जाता । जो चीज वे इस्तेमाल करते हैं, रवानगी के समय उनके असबाब में सहेज दी जाती है ।

"तीज़-त्यौहार पर रैय्यत सलामी-नजराने के लिये न आये, तो यही हमारी अवज्ञा समझ लो । इस बार तीजों पर एक गरीब घर की जवान ठकुराइन रनिवास से लौट रही थी । अपनी नजर पड़ गई । दिन भर खयाल से उतरी रही पर रात सोने ज़ा रहा था कि उसका खयाल आ गया । पिस्तौल जेब में डाला और अकेले ही पांव पैदल उसके यहां जा पहुंचा । ठाकुर की बुढ़िया मां सामने पड़ी । उसे पिस्तौल दिखाकर पूछा––"तुम्हारी बहू कहां है ?"

"बुढ़िया ने सहम कर आंगन से छत की ओर हाथ उठा दिया ।

"चुप बैठी रह । मुंह से बोल फूटा तो गोली मार दूंगा ।" बुढ़िया से कहा और खुद ज़ीना चढ़ छत पर जा पहुंचा ।

"बुढ़िया का जवान लड़का और बहू बिस्तर में एक दूसरे से लिपटे थे । लड़के की खोपड़ी पर पिस्तौल की नली रख कर मैंने कहा––"छोड़ो, उठो !"

"वह हड़बड़ा कर उठ गया । बहू दहशत में कपड़ा भी ओढ़ना भूल गई ।"

"ठाकुर को बांह से पकड़ कर खटिया के सिरहाने दूसरी ओर मुंह करके खड़ा कर कहा दिया कि जरा हिला तो खोपड़ी में गोली मार दूंगा । जब तक मैं उसकी चारपाई पर रहा, साला वैसे ही काठ की तरह खड़ा रहा ।·········तुम्हीं कहो, हम लोगों को खतरा नहीं तो खतरा है किसको ?

"इन्हीं गरमियों की बात है । ठिकाने का एक राजपूत शायद लखनऊ, [illegible]पुर में नौकरी-मजदूरी करता होगा । छतरी लगाये हमारी ड्योढ़ी के सामने से जा रहा था ।

164727
SIMLA

दरबान ने उसे टोका। राजपूत ने हेकड़ी दिखाई। यहां इलाहाबाद में भंगी भी हमारे सामने से छतरी लगा कर गुजर जाये तो अपने को मतलब नहीं लेकिन अपनी अमलदारी में दूसरा कायदा होता है। एक दिन रिआया छाता लगाकर सामने से गुजरेगी तो दूसरे दिन आंख से आंख मिलाकर सवाल करेगी—तुम मालगुजारी लेने वाले कौन होते हो ? पैदा तो हम करते हैं ?

"दो-चार रैयत के मालगुजारी रोक लेने से क्या बनता बिगड़ता है ? वह तो ऐसे समझो जैसे खलिहान में से पंछी चोंच भर ले जाय लेकिन एक दिन बेपरवाही में अपने अधिकार की उपेक्षा की जाय तो दूसरे दिन वह हमारा अधिकार ही नहीं रहेगा। यदि मालगुजारी न देने से रिआया का कुछ न बिगड़े, उसे डर न हो तो वह दे क्यों ? उनके घर से मालगुजारी न निकल सकने पर भी उनका छप्पर फुंकवा देना जरूरी होता है, सिर्फ कायदे और अधिकार की रक्षा के लिये।

"भैय्या, हुकूमत कोई खुशी से नहीं झेलता। हुकूमत जुल्म के बिना कभी चली है ? हाकिम और रिआया का तो शिकारी और शिकार का नाता है। बस चलते शिकार शिकारी के हाथ क्यों पड़ेगा ? शिकार का दांव लगेगा तो शिकारी पर चोट करेगा ही। हुकूमत में जोर-जब्र और भय ही चलता है। दूसरे को भय से दबाकर ही स्वयं भय से बचा जा सकता है। इससे कुछ अपने को भी सहना ही पड़ता है। कमीन किसान को तिनकों की झोपड़ी में कोई भय नहीं; राजा-ठाकुर को पत्थर के किले में लोहे के फाटक लगाकर भी संगीन का पहरा रखना पड़ता है……।"

वज्रबहादुर को सहसा बुरा आदमी कह देना उचित नहीं पर उसमें भलमनसाहत क्या थी ? आदमी तो वह भला ही था, यदि हुकूमत का जुनून उसके सिर न होता।

—:○○:○:○○:—

चोरबाजारी के दाम

जगीरीमल के पिता बुलाकीराम लाहौर में अंग्रजी दवाइयों की एक दूकान में कम्पाउण्डर का काम करते थे। रोज ही देखते थे कि दो-अढ़ाई रुपये की छटांक भर दवाई में से आठ-दस बूंदों को आध पाव पानी में मिला देने से मरीज के लिए दस-बारह आने की बोतल बन जाती है। उनकी दृष्टि में इससे अधिक मुनाफे और इज्जत का दूसरा कारोबार नहीं हो सकता था।

जगीरीमल ने एन्ट्रेंस की परीक्षा पास कर ली तो उसके पिता ने उसे छ. मास लाहौर में दवा की दुकान पर अपने साथ शागिर्द रख कर नुसखे पढ़ने और दवाइयां बनाने की कला सिखा दी थी। इसके बाद अपनी उम्र भर की बचत लगा कर जगीरीमल के लिए रावलपिंडी में केमिस्ट अर्थात अंग्रेजी दवाइयों की एक छोटी सी दूकान खोल दी थी।

जगीरीमल की दूकान ने शीघ्र ही उन्नति की। आलमारियों की संख्या दो से चार हो गई। तभी भगवान की इच्छा से विलायत में लड़ाई लग गई। विलायती चीजों के, खास कर दवाइयों के दाम चढ़ गये। जगीरीमल को रुपया कमाने का चस्का लग गया था। पिछले वर्ष ही उसका विवाह हुआ था। उसने बहू का जेवर एक साहूकार के यहां रखकर कर्जा लेकर विलायती दवाइयां दूकान में भर लीं। लाहौर से दवाइयां खरीद लेने में पिता सहायता करते थे। जगीरीमल चाहता तो बरस भर में बहू का जेवर छुड़ा लेता लेकिन उसे कमाई का रस लग चुका था। उसने लकड़-मण्डी में एक मुसलमान गूजर का अधगिरा कच्चा मकान खरीद लिया और एक अच्छा बड़ा सुन्दर सा मकान बनाने लगा। मकान के आधे में खुद रह कर आधे से किराये की आमदनी भी हो सकती थी।

लड़ाई के समय आवश्यक चीजों के दाम बेहिसाब बढ़ते देखकर सरकार ने दामों पर कन्ट्रोल लगा दिया था। मतलब था कि जरूरी चीजों के अभाव में आवश्यकता से

बावले लोग बगावत ही न कर बैठें। दवाइयों पर भी कन्ट्रोल हो गया था। कन्ट्रोल से व्यापारियों को और अवसर मिला। कन्ट्रोल का अर्थ हो गया 'अप्राप्य वस्तु'। कन्ट्रोल से निश्चित दामों से अधिक मांगे जाने पर कानूनी कार्रवाई हो सकती थी पर बीमारी में दवाई खरीदते समय कन्ट्रोल के कानून का जोर अजमाने का धैर्य किसे होता है ? जगीरीमल ने मीठी जबान का अभ्यास भी कर लिया था; वही तो व्यवसायी की सफलता का रहस्य है। कन्ट्रोल की दवाई की मांग होते ही वह बेबसी और सहानुभूति से खेद प्रकट करता—"कन्ट्रोल क्या हो गया, दवाई मिलती ही नहीं।"

ग्राहक प्राणों की भीख मांगता हुआ मुंह मांगे दाम देने के लिये गिड़गिड़ाने लगता तो जगीरीमल किसी न किसी प्रकार सहायता करता ही।

जगीरीमल मन ही मन अनुभव करता था कि कोई 'साला' गले पर छुरी का दबाव पड़े बिना पैसा क्यों उगलेगा ? असमर्थ ग्राहक निराश होकर डबडबाई आंखों से उसकी दूकान से लौटते तो जगीरीमल सहानुभूति अनुभव करता पर मन ही मन सोचता भी कि अपना जान-माल लगाकर चार पैसे बनाने के लिये ही तो दूकान में माल लाकर रखा है।.....भगवान ऐसे ही सब किसी का पूरा करते हैं। ग्राहक की बेबसी में उसे अपने लाभ की आशा की गुदगुदी सी अनुभव होती। ग्राहकों की बीमारी और कठिनाई से उसे लाभ की सान्त्वना मिलती थी। फावड़े जैसे बड़े-बड़े हाथ-पांव और भारी पलंग के पावों जैसे कोहनी और घुटनों वाले राई, गूजर और पठान बदरंग हो चुका नीला तहमत बांधे, फटा काला कुरता पहिने और मैली पगड़ी बांधे उसकी दूकान के फर्श पर बैठ कर उसे 'मालिक' सम्बोधन कर दवाई के दाम कम कर देने के लिये गिड़गिड़ाते और मुंहमांगा दाम न चुका पाने के कारण लौट जाते। ग्राहकों की यह बेबसी उसकी दूकान के कैश बक्स में सिमिट कर लक्कड़मण्डी में सुन्दर बड़े मकान का रूप लिये जा रही थी। वह अपनी पूरी कमाई दुकान और मकान में लगाये दे रहा था।

जगीरीमल का मकान अभी पूरा नहीं हो पाया था। उसे प्राणों की रक्षा के लिये अपनी बहू और डेढ़ वर्ष के पुत्र कमल को लेकर भागना पड़ गया। सरहद (रावलपिंडी) पाकिस्तान बन गया था। ब्रिटिश सरकार एक के दो देश बना देने के कठिन कार्य में लगी हुई थी इसीलिये उसने कुछ दिन के लिये अपनी व्यवस्था को ढील दे दी थी। कानून और अमन की छत्र-छाया में जगीरीमल की मधुर, धीमी आवाज और दुबले-पतले हाथों की बहुत सामर्थ्य और शक्ति थी, वह पीड़ा और बीमारी से बिलबिलाते लोगों से मनमाने दाम वसूल कर सकता था। उसके इस अधिकार की रक्षा के लिये सरकारी थाना, पुलिस की गारद और तोप-बन्दूक, हवाई जहाज से लैस

सरकारी व्यवस्था मौजद थी। ब्रिटिश सरकार ने व्यवस्था को ढील दे दी तो राई, गूजरों और पठानों के हाथ निर्भय और उच्छृखंल हो गये, वे मकानों और तिजोरियों के तालों को चूर-चूर करने लगे। व्यवस्था के सहारे पनपने वाले हिन्दू, खत्री और जैनी व्यापारियों के मकान जलाये जाने लगे, उनके कोमल शरीर छिन्न-भिन्न होने लगे। जगीरीमल ने अपनी जमा-पूंजी बाध कर दूकान को ताला लगा दिया। बहू और लड़के को लेकर रावलपिंडी से भाग निकला।

रावलपिंडी से लाहौर तक लूट-पाट और हिन्दुओं के कत्ल की भीषण आग धधक रही थी। जगीरीमल हिन्दू था। वह लाहौर की ओर जाता तो भट्ठी की आग से बचने के लिये अलाव मे कूद जाना होता। वह बच्चे और बहू को लेकर काश्मीर की ओर भागा। रावलपिंडी से चलते समय मोटर के अड्डे पर उसे पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने रोक लिया। उस पर चोरी करके भागने की शंका की गई। वह सिपाहियों के पांव छूकर गिड़गिड़ाया। सिपाहियों ने दया कर उसकी स्त्री के शरीर का जेवर और मोटा-मोटा असबाब हिरासत में रखकर उसे जाने की आज्ञा दे दी। जगीरीमल को छः रुपया सवारी की जगह तीस रुपया सवारी किराया देकर किसी तरह लारी में फंस कर बैठने की जगह मिली। उसने मन ही मन भगवान की इस दया के लिये धन्यवाद दिया। तुम्हारी दया अपार है।

जगीरीमल को काश्मीर में भी शरण न मिली। अर्फ दियों के जिरगे श्रीनगर की ओर बढ़े चले आ रहे थे। हिंदू भाग रहे थे। जगीरीमल को अपनी बहू और बच्चे सहित फिर भागना पड़ा। इस बार जम्मू जाने के लिये मुसलमान लारी वाले से नहीं, लारी के मालिक हिंदू भाई से वास्ता पड़ा। लारी में किसी तरह सिर छिपा सकने के लिये सात रुपया सवारी के दाम की जगह उसे सत्तर रुपये सवारी के देने पड़े। यों तो हिंदू रियासत में हिन्दु पुलिस मौजूद थी परन्तु कानून के जोर पर टिकट के लिये मुनासिब दाम देने के झगड़े में वह श्रीनगर में ही फंसा रह जाता। हिंदू भाइयों का यह अन्याय उसे खला, पर विवश था। किसी तरह श्रीनगर से जम्मू पहुंचा।

जम्मू में भी पाकिस्तान के आक्रमण का प्रबल आतंक था। सिर छिपाने के लिये जगह न थी। वह कभी पैदल ठोकरें खाता, पचगुने, दसगुने दाम देकर लारियों में फंस कर सफर करता, कभी विना टिकट गाड़ी की छत पर या भीतर सीट पर बैठकर चलता। पंजाब में कहीं जगह न पा सकने के कारण वह देहली तक पहुंच गया।

शरणार्थी जगीरीमल को देहली के कैम्प में अस्थायी शरण तो मिली परन्तु उसके जीवन की आशा का एक मात्र केन्द्र लाड़ला 'कमल' जड़ से उखड़ जाने और मारा-

मारा फिरने के कारण कुम्हलाता जा रहा था। कैम्प में जगीरीमल राशन के सरकारी दान पर निर्वाह कर रहा था। एक समय वह दवाइयों का मालिक था। अब उसकी सामर्थ्य न थी कि प्राण बचा सकने की विद्या में कुशल बड़े-बड़े डाक्टरों को मुंहमांगी भेंट देकर कमल के लिये दवाई खरीद सकता; परन्तु उसने हिम्मत न हारी। वह बेटे को गोद में लेकर सिविल हस्पताल पहुंचा। वहां जगह न पाकर इरविन हस्पताल में गया। हस्पताल के वार्ड और बराण्डे मरीजों से भरे थे। जगीरीमल के गिड़गिड़ाने और शरणार्थियों के प्रति सरकार के कर्तव्य के विषय में बहुत जिरह करने पर भी उसे जगह न मिल सकी। बच्चे के लिये बोतल में दवाई लेकर ही लौट आना पड़ा।

जगीरीमल और कमल की मां बच्चे को बारी-बारी से गोद में लिये रहते। सुबह-शाम उसे हस्पताल ले जाकर डाक्टरों को दिखाते। हस्पताल के समीप ही रहने के लिये उन्होंने दिल्ली दरवाजे की फसीलों में बनी महराबों में जगह बना ली थी। धूप और ओस से बचने के लिये जगीरीमल ने फसील की दीवार के सहारे दो बांसों पर एक चटाई बांध कर छप्पर बना लिया था। चार दिन तक डाक्टरों के सामने गिड़गिड़ाने और दुहाई देने के बाद जगीरीमल को कमल के लिये हस्पताल के मरीजों से भरे बराण्डे में जगह मिल गई। हस्पताल मरीजों को जगह दे सकता था, मरीज के सम्बन्धियों को नहीं परन्तु कमल की अवस्था चिंताजनक होने के कारण और डेढ़ बरस के बच्चे की मां के बिना संभालना कठिन होने के कारण, कमल की मां को उस के समीप रहने की अनुमति दे दी गयी।

कमल की मां बीमार बच्चे के लोहे के पलंग के नीचे फर्श पर बैठी रहती। बच्चे की कांख और कराहट सुनते ही उस ओर ध्यान देती। जगीरीमल मुफ्त राशन के लिये शरणार्थी कैम्प तक न जा पाता। कैम्प में न रहने के कारण वह मुफ्त राशन का अधिकारी भी न रहा। वह प्राय. तंदूर से रोटी खरीद कर खा लेता और कमल की मां के लिये रोटी हस्पताल में पहुंचा देता। उस की जेब के पैसे भी अब खतम हो चुके थे। उसने अपनी अंगूठी बेच डाली। उसे सोने के भाव से ४०) मिलने चाहिये थे परन्तु सर्राफ के सामने यह सबूत पेश करना कठिन था कि अंगूठी चोरी की नहीं है। अपना ही गहना जगीरीमल को चोरी के माल के भाव बेचना पड़ा। तब इस उल्टी चोरबाजारी के लिये उसके मुंह से गाली निकले बिना न रह सकी।

हस्पताल में जगह पा लेने पर भी कमल की अवस्था गिरती ही गई। बाप के सामने आने पर भी बच्चे के मुंह से बोल न निकल पाता था। कमल बाप को पहचान भी न सकता; यह देखकर जगीरीमल को उस समय मरीज के पास बेकायदा खड़े

रहने के लिये मना किया। बच्चे को इस कठिन अवस्था में देखकर कायदे की पावंदी निबाहना बाप के लिये सम्भव न था। वह पल भर को दूर हट गया। डाक्टर आया। जगीरीमल दूर से देख रहा था। डाक्टर ने कमल के सिरहाने लटके चार्ट पर निगाह डाली। उड़ती-उड़ती नजर से पल भर बच्चे को देखा, झुककर और टटोल कर नहीं, जैसे दूसरे मरीजों को देखता चला आ रहा था। डाक्टर आगे बढ़ गया—जैसे उस बच्चे की ओर ध्यान देने से कुछ लाभ न था।

डाक्टर की इस उपेक्षा से जगीरीमल के कलेजे में बरछी सी लग गई। वह डाक्टर के सामने जा खड़ा हुआ। उसकी आंखों में आंसू आ गये थे और गला भर आया था। मुंह से बोल न फूट सकने के कारण उसने अपनी पगड़ी डाक्टर के कदमों पर रख दी और गिड़गिड़ाया—"डाक्टर साहिब ! बाप, घर, जायदाद सब तबाह हो गया। हम अब दर-दर के मोहताज हो गये। बस, उसी लड़के के लिये जिन्दा हैं। गरीब का बच्चा जान कर बेपरवाही न कीजिये। बस चलता तो इसे सोने में तौल देता, यकीन कीजिये। उम्र भर मजदूरी करके आप का एहसान और कर्ज पूरा करूंगा।"

डाक्टर ने जगीरीमल को धैर्य बंधाया—"कर्ज और एहसान की कोई बात नहीं है। हम अपनी ड्यूटी पूरी कर रहे हैं। तीन दिन से हम तुम्हारे लड़के के लिये इंजेक्शन लिख चुके हैं। बाजार में नहीं मिलता तो हम क्या करें ? हस्पताल ब्लैक मार्केट का दाम नहीं दे सकता इसलिये दूकानदार हस्पताल को इंजेक्शन नही देगा। तुम ले आओ, हम लगा देंगे.....।" डाक्टर ने इंजेक्शन का नाम बता दिया।

जगीरीमल से दवाइयों के व्यवसाय की बात छिपी न थी। उसके दिल ने नहीं माना कि दिल्ली जैसे शहर में दवाइयों की दूकान पर वह इंजेक्शन न मिल सके। सरकारी हस्पताल को सत्रह रुपये के इंजेक्शन के अठारह या बीस देने की इजाजत नहीं थी, तीस या चालीस तो दूर की बात थी परन्तु कमल की जान बचाने के लिये जगीरीमल सौ हजार भी देता, अगर रावलपिंडी से चलते समय उसका सब कुछ न छिन गया होता। उसने डाक्टर को आश्वासन दिया कि वह दवाई लाने की कोशिश करेगा।

कमल की मां का सब जेवर छिन जाने के बाद एक मामूली सा लाकेट ही कपड़ों के नीचे छिपा रह गया था। जगीरीमल ने कमल की मां को स्थिति समझाई। उसने तुरन्त लाकेट गले से उतार कर पति के हाथ में दे दिया। जगीरीमल को जेवर के तौल का अनुमान था। फिर भी उसने लाकेट को हाथ में तौल कर काल्पनिक सर्राफ को गाली दे कहा—"न जाने क्या मांगेगा ? इतने से पूरा पड़े, न पड़े।" उसे याद

आ रहा था ऐसे अवसरों पर उसने तीन-तीन चार-चार गुना दाम लिये थे। कातर ग्राहक के आंसू देख कर उसकी जीभ जरूर पिघल जाती थी परन्तु दवाई की आल-मारी की चाबी वाली मुट्ठी कभी ढीली न हुई थी।

कमल की मां ने सांस ले सुहाग का चिन्ह नाक की लौंग भी उतार कर पति के हाथ में दे दिया। जगीरीमल ने सोना पगड़ी के छोर में बांध लिया और लपकता हुआ बाजार की ओर चल दिया। हस्पताल से निकलते ही टांगा दिखाई दिया। टांगे वाले के अधिक दाम मांगने पर भी दवाई जल्दी ला सकने के विचार से वह टांगे पर बैठ गया।

दिल्ली के सर्राफ, घर-बार से बिछुड़े शरणार्थियों की अवस्था से परिचित थे। वह जानते थे कि उन्हें मजबूरीं में जैसे-तैसे दामों जेवर बेचना ही पड़ेगा। तीन चार सर्राफों के यहाँ भटककर जगीरीमल सत्तर रुपये का सोना पचास में बेच पाया और दवाई की दूकान पर पहुँचा।

पहिले प्रश्न का उत्तर उसे इन्कार में ही मिला।

जगीरीमल ने विश्वास दिलाया कि उसे दामों की रसीद नहीं चाहिये। हस्पताल में पड़े अपने इकलौते बेटे के लिये उसे दवाई की जरूरत है। दूकानदार ने दवाई ला देने की अनुमति प्रकट की। दाम पूछने पर उत्तर मिला—"आजकल पचहत्तर रुपये में मिल रही है।"

जगीरीमल के पांव तले की धरती खिसक गई। अनुनय से उसने गिड़गिड़ा कर पचास रुपये दूकानदार के सामने रख दिये और कहा—"भाई साहब, मेरी खुद कैमिस्ट की दूकान थी। असल दाम सत्रह रुपये हैं। मेरे बच्चे की जान तुम्हारे हाथ में है।"

जगीरीमल का इस तरह मुंह लगना दूकानदार को बहुत बुरा लगा। उसने कड़े स्वर में उत्तर दिया—"न हमारे पास दवाई हैं, न हम ढुंढ़वाने का झमेला सिर लेते हैं, अपने रुपये उठाइये, जहाँ मिलती हो, ले लीजिये।"

जगीरीमल ने कठिनाई से आंसू रोके। हिम्मत बांधी। वह दो और दूकानों में गया। दोनों जगह वैसे ही उत्तर मिले जैसे वह रावलपिंडी में स्वयं दिया करता था। अन्य दूकानों पर जाना व्यर्थ था। विवश हो हस्पताल की ओर लौट चला। बेटे की नाजुक हालत में दवाई बिना लिये लौट जाने से उसका दिल डूबा जा रहा था। पांव मन-मन भर के हो रहे थे। विवश था। सोचा चल कर लड़के की हालत तो देखे।

हस्पताल में वार्ड के समीप पहुँचते ही उसे किसी की चीखें सुनाई दीं। वह कमल की मां का चीत्कार पहचान गया। जगीरीमल लड़खड़ा कर जमीन पर बैठ गया। दोनों हाथों में सिर थाम लिया। उसकी आंखों से आंसू सड़क पर गिरने लगे। जो

कुछ देख न सकने का, सह न सकने का विश्वास था, जाकर वही देखा।

हस्पताल में बीमार पड़े शरणार्थियों के पांच-सात सम्बन्धियों ने जाकर उसे आश्वासन दिया और कमल के शव के प्रति आवश्यक कर्त्तव्य पूरा करने के लिये धैर्य बँधा कर उसकी सहायता करने लगे।

कमल का शरीर दो गज कोरे लट्ठे में लपेट दिया गया और जगीरीमल को सांत्वना देने के लिये इकट्ठे हुये शरणार्थी भाई बच्चे को बाहों में उठा कर जमुना की ओर चल दिये।

कमल के शव को जमुना में प्रवाह कर देने के बाद स्नान करते समय जगीरीमल को सांत्वना देने के लिये साथ आने वालों ने बच्चे की बीमारी की बात पूछी। जगीरीमल फूट-फूट कर रो उठा। उसने बताया—"रावलपिंडी में स्वयं उसकी दवाइयों की दूकान थी। आज बेघरबार होकर उसकी यह हालत कि उसका बच्चा बिना दवाई के मर गया···दवाई केवल चोरबाजार में बिकने के कारण वह सत्रह रुपये की दवाई के पचहत्तर कहाँ से देता। उसने दूकानदार के सामने पचास रख दिये थे परन्तु जालिम का कलेजा न पसीजा······।"

चोरबाजार के इस अन्याय से शरणार्थी साथियों का खून खौल उठा। उनका बेबस क्रोध चोरबाजारी करने वालों के प्रति वीभत्स गालियों के रूप में उबलने लगा। इस अन्याय की शिकायत करने के लिये उन्होंने जगीरीमल को धर्म और ईमान की कसम दी। जगीरीमल के मुंह से उत्तर न निकल पा रहा था। वह दोनों हाथों से सिर थामे अपनी आंसू भरी आँखें जमुना की काली लहरों पर टिकाये था।

उसकी स्मृति उसकी दूकान में दवाई के लिये आये कातर, चोर-बाजारी के दाम देने में असमर्थ, विशाल शरीर, बेबस राइयों-गूजरों और पठानों की आँसू भरी आँखों को देख रही थी।

गवाही

घर से चलते समय ही ज्ञानचन्द को तारा ने बहुत समझा कर कहा—"जी, कल की तरह जुलूस-उलूस में मत चले जाना। मामा जी नाराज हो रहे थे। तुम्हें क्या लेना है इन सब झगड़ों से ? पुलिस वाले ठहरे···वैरी हो जायँ तो और मुसीबत ! अपने काम से मतलब रखो।"

ज्ञानचन्द ने मन ही मन कहा—"मामा जी नाराज क्यों नहीं होंगे अफसर जो ठहरे। लम्बे-लम्बे हाथ जो मारते होंगे·····।"

तारा के मामा सेल्स टैक्स में अच्छे पद पर हैं पर तारा कह रही थी तो ज्ञानचन्द बिलकुल अनसुनी भी नहीं कर सकता। उसने जिद् करके पढ़ी-लिखी लड़की से ब्याह किया था। उसे डांट कर चुप नहीं करा दिया जा सकता था।

शहर में 'भ्रष्टाचार बन्द करो' आन्दोलन आरम्भ हुआ था। गंगाराम, बैंक के आदमियों को भी उसमें सम्मिलित होने के लिये साथ ले जाता था। उसने ज्ञानचन्द से पूछा—"आज भी चलोगे न ?"

"देखा जायगा, हम भी सबके साथ हैं।" ज्ञानचन्द ने कच्चा-सा उत्तर दे दिया। बैंक में क्लर्क पुलिस की ज्यादतियों की चर्चा करते रहे। ज्ञानचन्द संध्या समय फिर जलूस में शामिल हो गया और जोश में आकर नारे लगाते हुए आगे-आगे चलने लगा। दंगा न हो जाय इस विचार से एक दर्जन पुलिस वाले भी साथ-साथ चल रहे थे जुलूस के लोग नारे लगा रहे थे—'भ्रष्टाचार बन्द करो ! रिश्वतखोरी बन्द करो ! पुलिस का जुल्म बन्द करो !' यह नारे सुन कर पुलिस के सिपाही ज़रा मुस्करा देते थे।

ज्ञानचन्द सात बजे घर लौटा तो तारा बोली नहीं। मां और बड़े भाई की नजर बचाकर ज्ञानचन्द ने दो-एक बार पुचकारा, तारा मुंह फेर कर सास के पास रसोई में चली गई।

सास ने तारा से कहा—"अरे, यह मैं किये लेती हूँ, जा तू मुन्ना को देख; खाट पर से गिर न जाय।"

ज्ञानचन्द मुन्ना से खेलने लगा था। तारा आई और उसकी ओर पीठ किये मुन्ना को उठा कर दूध पिलाने के लिये छत पर ले गई।

ज्ञानचन्द पीछे-पीछे छत पर पहुँचा और एकांत देख कर शारीरिक ख़ुशामद से तारा को मनाने लगा। तारा ने उसका हाथ हटाते हुये विरोध किया—"हमें मत छेड़ो, तुम अपने जुलूस में जाओ। तुम्हें हमारी क्या परवाह है···?"

"अरे देखो तो, चाँदनी कैसी खिल रही है।" ज्ञानचन्द ने कहा।

"तुम्हें क्या है चाँदनी से और हमसे ? तुम अपनी पालटिक्स करो !" तारा मुंह दूसरी तरफ किये रही।

"सोचो तो, हमीं किसी झगड़े में फंस जायं और रिश्वत देनी पड़े तो ?"

"झगड़े में फंसे दुश्मन ! हम क्यों फंसें ? अपने काम से मतलब रखो !" तारा ने विरोध भरी आँखें मिलाईं।

ज्ञानचन्द आकाश की ओर देख रहा था—"आज तो हम-तुम कहीं घूमने चलें ? क्या ख्याल है ?"

"तुम्हें फुर्सत कहां" तारा बोली, "मामा जी, ने सिनेमा के पास भिजवा दिये थे कि सिनेमा चले जायेंगें तो जुलूस के झगड़े से बचे रहेंगे पर तुम्हें तो जुलूस प्यारा है। किसी की सुनते कब हो ?"

"तो दूसरे शो में चलो। खाने-पीने से निबट लो। मुन्ना अम्मा को सौंप देना।" ज्ञानचन्द ने समझाया।

तारा ने अपने लिये नई साड़ी निकाली, ज्ञानचन्द के लिये भी मलमल का ताजा धुला कुर्ता और नया पाजामा। बाजार से जाते समय ज्ञानचन्द ने फूलों का एक गजरा खरीद लिया। तारा को शौक तो था परन्तु घर में अम्मा जी और जेठजी से डरती थी। बाजार से निकल कर सड़क पर एक पेड़ की छाँह के अन्धेरे में रुक कर उसते गजरा जूड़े पर बाँध लिया। ज्ञानचन्द ने दोने में पान ले लिये थे।

स्पेशल क्लास के पास थे। भीड़ न थी। दोनों पान खाते, मज़ाक और बात करते सिनेमा देख रहे थे। खूब मज़ा आ रहा था।

दूसरा शो साढ़े-बारह बजे समाप्त हुआ। चाँदनी और भी छिटक गई थी और सड़कें सूनीं थीं। ज्ञानचन्द ने कहा—"क्या जल्दी है अपने को; पैदल चलें, मज़ा आयगा।"

तारा को भी अच्छा लग रहा था, सिनेमा से भी अधिक अच्छा। ज्ञानचन्द कोई

मज़ाक की बात सुनाता जा रहा था और तारा छोटा रूमाल होठों पर रखे खिसखिस कर हंस रही थी। वे दयानिधान पार्क की बगल से जा रहे थे।

"ए जाने वालो !" कड़ी आवाज़ सड़क किनारे के पेड़ की छांह में से सुनाई दी, "ठहर जाओ !"

दोनों ठिठक गये। घूमकर देखा, पेड़ की छांह के नीचे से पुलिस का एक सिपाही लम्बी लाठी लिये दो कदम बढ़ आया।

"कहां जा रहे हो ?" सिपाही ने प्रश्न किया।

"घर जा रहे हैं।" ज्ञानचन्द ने निडर स्वर में उत्तर दिया।

"हूं" सिपाही बोला, "पहले कोतवाली चलो !"

"क्यों ?" घबराहट छिपाकर ज्ञानचन्द ने विरोध किया, "हम सिनेमा देखकर घर लौट रहे हैं। कोतवाली क्यों चलें ? क्या किया है हमने ?"

"कोतवाली चलो, वहां ही सब जवाब मिलेगा।"

"पर कोतवाली क्यों जायं ?" ज्ञानचन्द ने दृढ़ता दिखाई, "हमारा कसूर बताओ ! हम नहीं जायंगे। यह कोई मज़ाक है ?"

तारा बहुत घबराकर पति की ओट में हो गई।

"चलते हो सीधे-सीधे या सीटी बजाकर और सिपाही बुलाऊं।" सिपाही ने डांटा, "ऐसे नहीं चलोगे तो हथकड़ी में चलोगे। अपनी शराफ़त कोतवाली में चलकर ही बताना।" उत्तर मिला।

सूनी सड़क पर कोई दूसरा आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। ज्ञानचन्द लाचार हो गया। हाथ-पांव खुले रहने पर भी वह कानून और सरकारी अधिकार की रस्सी में बंधा चला जा रहा था पर सिपाही से जरा हटकर चल रहा था कि यह न जान पड़े कि उन्हें कोतवाली ले जाया जा रहा है। रास्ते में आते-जाते दो-चार आदमी दिखाई भी दिये तो उसे झेंप ही मालूम हुई।

तारा रूमाल से आंखें पोंछती जा रही थी। ज्ञानचन्द उसे ढाढ़स बंधा रहा था—"घबराने की क्या बात है ? डर किस बात का है ?"

कोतवाली में ले जाकर सिपाही ने ज्ञानचन्द और तारा को एक ओर खड़ा कर दिया।

सिपाही ने बिजली की बत्ती के नीचे तख्त पर डेस्क के सामने कलम हाथ में लिये बैठे मुन्शी जी से बात की।

ज्ञानचन्द और तारा को मुंशीजी ने समीप बुला लिया।

मुंशी जी ने प्रश्न किया—"इस लड़की को कहां से लाये हो ?"

"मेरी वाइफ है, साहब !" ज्ञानचन्द ने ज़ोर देकर कहा, "हम लोग सिनेमा

देखकर घर लौट रहे थे। यह सिपाही हमें जबरदस्ती यहां ले आया। यह क्या वेइन्साफी……।"

"हुजूर, बदमाश है।" सिपाही ने ऊंचे स्वर में टोक दिया, "वाइफ क्या ? यह लोग सड़क किनारे पेड़ की छांह के अंधेरे में बुरा काम कर रहे थे। कोई गिरस्थ ऐसा करता है ?"

"झूठ," घोर अपमान के क्रोध में ज्ञानचन्द विरोध करना चाहता था।

सुन्शीजी जोर से बोल उठे––"लाहौल बिलाकुव्वत !" उन्होंने घृणा से एक ओर थूक दिया, क्या नापाक और वेहया हरकत ! पढ़े-लिखे जान पड़ते हो। जानते नहीं, यह कांग्रेस-राज है। सब गुण्डापन खत्म कर दिया जायगा।"

ऐसी लांछना सुनकर तारा सिसक-सिसक कर रोने लगी।

ज्ञानचन्द का मस्तिष्क अपमान और क्रोध से भर गया। यदि दूसरा अवसर होता तो ऐसा अपमान करने वाले को वह मार बैठता परन्तु सामना था, सरकार की शक्ति से और वह भी सरकार के घर में।

ज्ञानचन्द ने तिलमिलाकर विरोध किया—"विलकुल झूठ है साहव, आप यों ही एक सिपाही की बात मान लेंगे ? कोई सवूत भी तो होना चाहिये ! ऐसे तोहमत लगा देंगे !"

मुन्शीजी ने ज्ञानचन्द की ओर घूरकर देखा—"हमें कानून सिखाते हो ? सवूत की धौंस है ? ऐसा काम करते वक्त कौन अपने वाप को गवाही के लिये सामने खड़ा कर लेता है ?"

मुन्शी जी के तर्क से ज्ञानचन्द का दिल वैठ गया। फिर भी बोला—"साहव, यह हम पर विलकुल झूठा इलजाम लगाया जा रहा है। आप हमारे मकान पर पूछताछ करवा लीजिए।"

"कहां है मकान तुम्हारा ?"

"पानदरीबा में, नाले के पास।" ज्ञानचन्द ने उत्तर दिया। मुन्शीजी ने पता एक पुर्जे पर लिखकर नाम, बाप का नाम, उम्र और हुलिया भी लिख लिया।

ज्ञानचन्द ने साहस किया—"आपको हमारा एतबार नहीं तो आप हमारे घर खवर भेजकर जमानत ले लीजिये।"

"जमानत की बात कल होगी। काले कोसों तो घर का पता दिया हैं। कौन जायगा इस वक्त ढूंढ़ने ?" मुन्शी जी ने डेस्क से उठते हुये जवाब दिया और सिपाही की ओर देख कर हुक्म दे दिया, "बन्द कर दो इन्हें अलग-अलग कोठरी में।" और मकान के पिछवाड़े की ओर चले गये।

तारा को अपने से अलग बन्द किये जाने के ख्याल से ज्ञानचन्द के शरीर में बिज़ली की लहर का सा झटका लगा ।

तारा फूट-फूट कर रो पड़ी ।

ज्ञानचन्द ने अपनी ओर आते हुये सिपाही से नम्र विरोध किया—"एक शरीफ लेडी का तो आपको ख्याल करना चाहिये । हम लोग यहां बरामदे में ही बैठे रहेंगे ।"

"क्या फायदा है फज़ीहत कराने में ?" सिपाही ने सुझाया, "दे दिलाकर अपने घर जाओ ।"

"आप रिश्वत मांगते हैं ?" ज्ञानचन्द ने अवसर देख कर क्रोध दिखाया । जेब में आठ आने ही तो पैसे थे ।

"होश करो !" सिपाही ने जोर से डांटा, "रिश्वत का नाम लिया तो सीधे जेल भेज दिये जाओगे । जानते नहीं, यह कांग्रेस का राज्य है । जेब में कौड़ी है नहीं, बनते हैं शरीफज़ादे ।"

तारा सिसकियां ले रही थी । उसने ज्ञानचन्द को बनती बात बिगाड़ते देख कर उसे बांह से थाम एक ओर खींच लिया और अपनी उंगली से सोने की अंगूठी जल्दी से निकाल कर थमाते हुये कहा—"दे दो, तुम्हारे पांव पड़ती हूँ ।"

ज्ञानचन्द एक पल के लिये सन्न रह गया । दूसरा उपाय न देख कर डरते-डरते अंगूठी सिपाही की ओर बढ़ा कर बोला—"अच्छा, माफ कीजिये । इस समय किसी तरह इज्जत बचाइये । आप जानते हैं, हम बेकसूर हैं । भगवान जानते हैं, यह मेरी स्त्री है । आप चाहे चल कर मुहल्ले में दरयाफ्त कर लें ।"

सिपाही ने अनिच्छा से अंगूठी की ओर देख कर कहा—"हमें इतना टुच्चा समझ लिया है ? इतना ही दाम है तुम्हारी इज्जत का ? जानते नहीं, कितना संगीन मामला है ?"

ज्ञानचन्द के कुछ बोलने के पहले ही तारा ने दूसरी उंगली से भी अँगूठी खींच कर ज्ञानचन्द को थमा दी । ज्ञानचन्द ने वह भी सिपाही के हाथ में दे दी ।

"अच्छा देखें !" सिपाही प्रतीक्षा के लिये संकेत कर उसी ओर चला गया जिधर मुन्शी जी गये थे । दस मिनट बाद वह मुन्शी जी के साथ लौटा । सिपाही ने सिफारिश की, "हुजूर यह लोग रहम चाहते हैं । कह रहे हैं, शरीफ आदमी हैं । फिर ऐसी हरकत नहीं होगी ।"

"शरीफ आदमी !" मुन्शी जी घृणा से बोले, "यह शरीफ आदमियों की हरकतें हैं । तुम्हारी जमानत कौन देगा ?"

"पिता हैं, भाई हैं ।" ज्ञानचन्द ने क्रोध रोक कर कहा, "मैं बैंक में काम करता

हूं । बड़े साहब और अकाउन्टेंट साहब भी जानते हैं ।"

"हैं ?" मुन्शी ने जवाब दिया, "बड़े साहब और अकाउन्टेंट साहब बहुत खुश होंगे साहबजादे की हरकत सुनकर ।"

"हुजूर, किस्मत की बात है । भगवान जानते हैं, हमने कोई बेजा हरकत नहीं की ।" इस बार ज्ञानचन्द रो पड़ा ।

"झूठ बोलता है !" मुन्शी जी ने क्रोध दिखाया, "एक बेहयाई दूसरा झूठ ! दफा ४९५–४९६ में चालान कर दें तो पता चले । अपने बाप बड़े साहब को बुला लेना गवाही में । साले इतना नहीं जानते कि बहन···पुलिस रात में सड़कों पर अपनी मां··· के लिये नहीं सिर पटकती फिरती । हवलदार निकाल दो सालों को कोतवाली से···।"

ज्ञानचन्द और तारा जल्दी-जल्दी कदम उठाते घर की ओर भागे जा रहे थे । उन्हें न बिजली की बत्तियों के नीचे सूनी सड़क पर चलने का आनन्द आ रहा था, न बाजार के ऊपर खुले आकाश में खिलखिलाते चाँद की ओर उनकी दृष्टि जा रही थी । अपने मुहल्ले के समीप पहुँच कह ज्ञानचन्द के होंठ खुले—"मैं इन बदमाशों की रिपोर्ट करूंगा । एक तो झूठा इलजाम लगाकर बेइज्जती की दूसरे तोला भर सोना छीन लिया ।"

"अब तुम और फजीहत कराओगे ?···अभी कसर बाकी है ?" तारा ने रुआँसे-स्वर में विरोध किया ।

"पागल हो तुम !" क्रोध में ज्ञानचन्द ने समझाया, "ऐसे ये लोग जाने कितने शरीफ आदमियों की इज्जत और पैसा रोज झाड़ते होंगे । कोई आवाज नहीं उठायेगा तो लोगों की जान कैसे बचेगी ? मैं सुबह ही भ्रष्टाचार-विरोधी कमेटी के सभी लोगों से दस्तखत कराकर दरखास्त दूंगा । ऐसा जुल्म चुपचाप नहीं सहा जा सकता ।"

"मैं हाथ जोड़ती हूं, जो हुआ सो हुआ ।···अब तुम सबके सामने मेरी बेइज्जती कराओगे ?···बस हो गया । जाने कौन जनम के कर्म थे ।" तारा फिर रो पड़ी ।

"तुम समझती तो हो नहीं ।" ज्ञानचन्द झुंझलाया, "जुल्म के खिलाफ कोई बोलेगा ही नहीं तो जुल्म खत्म कैसे होगा ?"

"मुझे अदालत में नंगा कराना है तो तुम्हारी मर्जी ।" तारा ने भी वैसे ही उत्तर दिया, "मेरे लिए घर में तोला भर अफीम रखी है । जिस दिन तुम्हें यह करना होगा मैं खाकर सो रहूंगी ।"

× × ×

दूसरे दिन गंगाराम ने ज्ञानचन्द को फिर भ्रष्टाचार-विरोधी प्रदर्शन में चलने के

लिए कहा। ज्ञानचन्द को तारा की बात भी याद थी परन्तु वह जुलूस में गया और बहुत जोर से नारे लगाये। जुलूस विधान सभा के सामने खड़ा होकर नारे लगाता रहा।

मुख्य मंत्री सभा भवन की ड्योढ़ी से सामने के चबूतरे पर आ गये। नारे और भी जोर से लगने लगे।

मंत्री जी के हाथ उठाकर संकेत करने पर सब लोग चुप हो गये।

मुख्य मंत्री जी ने ने कहा—"····हमें यह देखकर बहुत प्रसन्नता है कि आप लोग भ्रष्टाचार दूर करना चाहते हैं परन्तु आपको यह याद रखना चाहिए कि जब तक पब्लिक भ्रष्टाचार का अवसर न दे, बेईमान अफसर भी कुछ नहीं कर सकते। पब्लिक ही भ्रष्टाचार रोक सकती है। पब्लिक को चाहिए कि वह किसी भी हालत में रिश्वत न दे और जो अफसर रिश्वत माँगे उसकी खबर हमें गवाही और प्रमाण सहित दें। कानून और पुलिस तो जनता की सेवा और रक्षा के लिए हैं। जो आदमी रिश्वत देता है, असली पापी वही है; वही जनता का शत्रु है। हम तो आपसे खुद पूछते हैं बताइये, किसने आपसे रिश्वत मांगी है ?·····"

ज्ञानचन्द चीख-चीखकर पुकार रहा था—"झूठ है झूठ है" पर आवाज नहीं निकल रही थी।···प्रमाण और गवाही वह क्या देता·····।

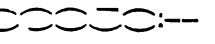

तगमे की चोट

डिप्टी कमिश्नर और दूसरे सरकारी अफसरों तक जैसी पहुँच सिंह साहब की थी, वैसी शहर में किसी दूसरे हिन्दुस्तानी की नहीं थी। उन्हें सभी सरकारी कमेटियों और दावतों में मान मिलता था। गवर्नर साहब के दरबार का निमंत्रण भी उन्हें मिला था और फिर सिंह साहब का यह आदर निरी हवाई चीज न थी, जैसे राय-साहबी या रायबहादुरी हो; सरकारी अफसरों से हाथ मिला सकने के लिये अपना पैसा बरबाद करें और जनता की गाली खाएं। जनता की गाली सिंह साहब को भी तो मिलती थी। उन्हें जनता अपनी असमर्थता के कारण ही तो गाली देती थी।

सिंह साहब को सरकारी आदर का आर्थिक लाभ भी कम न था। वकील वे यों भी बहुत अच्छे थे परन्तु मवक्किल उनकी योग्यता की अपेक्षा उनके सरकारी रसूख से अधिक आकर्षित होते थे। समझा जाता था कि सिंह साहब का पेशी पर जाना और सरकारी सिफारिश एक ही बात है। मुकद्मे की आधी मंजिल तो उन्हें वकील बना लेने से ही तय मान ली जाती थी। सन् १९३६ में कांग्रेसी सरकार बन जाने से उनके रोब और आमदनी को धक्का लगा था। तब भी गवर्नर अंग्रेज ही थे इसलिये सिंह साहब राजभक्ति के अपने पुराने सिद्धांत पर जमे रहे। १९३९ में युद्ध के समय जब कांग्रेसी सरकारें बिखर गईं और गवर्नर का राज फिर कायम हो गया तो सिंह साहब का कांग्रेस-विरोध और भी उग्र हो उठा।

सार्वजनिक जीवन में जैसे सिंह साहब को जनता की नाराजगी सहनी पड़ती थी वैसे ही उनके पुत्र शिवसिंह को भी स्कूल में लड़कों के ताने सुनने पड़ते थे। शिवसिंह को अपने पिता के बड़प्पन और सरकारी आदर का गर्व था। वह लड़कों के चिढ़ाने पर मारपीट के लिये तैयार हो जाता। वह जानता था कि सरकार उसकी पीठ पर है, अन्तिम विजय उसी की होगी। स्कूल की परीक्षाओं में शिव को पिता के सरकारी रसूख के कारण चिन्ता न करनी पड़ती थी इसलिये उसका ध्यान दूसरी बातों में

अधिक रहता था। मैट्रिक की परीक्षा में पर्चे पर उसका नाम नहीं केवल रोल नम्बर था। हेंकड़ी के जोर पर उस परीक्षा में वह पास नहीं हो सका। चिढ़ाने वालों को और अवसर मिला। इस प्रतिक्रिया में शिव और भी कांग्रेस-विरोधी और सरकार भक्त बन गया।

उस समय कांग्रेस युद्ध का विरोध कर रही थी और अंग्रेज सरकार जंगी कमेटियां बना कर जनता को युद्ध में भरती होने के लिये उत्साहित कर रही थी। सेना में नये-नये यंत्रों का प्रयोग हो रहा था। इसके लिये सरकार कम उम्र के शिक्षित युवकों की भरती अधिक पसंद करती थी। ऐसे नवयुवक यंत्रों के अंग्रेजी नाम और यंत्रों का प्रयोग जल्दी सीख सकते थे। नौजवानों के लिये खास सभायें की जाती थीं। इन सभाओं से सरकारी अफसरों के अतिरिक्त सरकार-परस्त गणमान्य व्यक्तियों के भी व्याख्यान करवाये जाते थे। ऐसी एक सभा में सिंह साहब बोले :—

"नौजवानो, तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमने इस देश में जन्म पाया है। जानते हो, जैसे इस देश में संसार का सबसे बड़ा पहाड़ हिमालय है वैसे ही इस देश की इज्जत संसार में बड़ी है। यह देश वीरों का देश है। तुमने चन्द्रगुप्त और अशोक का नाम सुना होगा। उन राजाओं के समय हमारे शूरवीरों की तलवारें आमू दरिया के किनारों पर चमका करती थीं। यह बाबर, प्रताप, शिवाजी और रणजीतसिंह जैसे वीरों का देश है। हमारे हरीसिंह नलुआ के नाम से कावुल-कंधार के बच्चे अब भी वैसे ही डरते हैं जैसे हमारे यहाँ बच्चे भूत और हौआ के नाम से डरते हैं। कांग्रेसी बनियों ने हमारे देश की बहादुरी का सत्यानाश कर दिया है। अब चोर-डाकुओं की तरह जेल जाना वीरता समझी जाती है। ये बनिये, राजपूतों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों को दबा कर उन पर राज करना चाहते हैं। पिछले जंग में हमारे बहादुर सिपाहियों ने मैसोपोटामिया और फ्रांस के मैदानों में भारत की वीरता का डंका बजा दिया था। सरकार ने हमारे बहादुरों की बहुत कद्र की थी। अंग्रेज खुद बहादुर हैं और बहादुर की कद्र करते हैं। पिछले युद्ध में जो भारतीय सिपाही बहादुरी से लड़े थे उन्हें सरकार ने बड़ी-बड़ी जागीरें और पेंशनें इनाम में दी थीं। जिन लोगों को फटी-चट्टी भी नसीब नहीं होती वे लोग भी फौज में जाकर फुलबूट पहन कर बन्दूक लेकर चलते हैं। जवानो, आज फिर मौका है। तुम लोग पढ़-लिख कर सिर्फ क्या चुंगी के मुन्शी और पटवारी ही बनोगे ? तुम लोग सूबेदार, कप्तान, मेजर और जनरल बनने के लिये पैदा हुये हो। जवानो, यह समय स्कूलों में पोथियां रटने का नहीं, कौम के लिये जंग के मोर्चे पर डटने का है। सरकार ने हुक्म दे दिया है कि जो नौजवान फौज में भरती हो जायंगे, उन्हें इम्तहान दिये बिना पास होने का सर्टिफिकेट दे दिया जायगा।

"नौजवानों, यह देश हमारी मातृभूमि है। हमारा शरीर इस देश की मिट्टी और जल से बना है। आज हमारे देश पर बदमाश जर्मनी और बेईमान जापान हमला कर रहे हैं। क्या हम औरतों की तरह घरों में छिपे रहेंगे ? जवानो, यह काम बूढ़ों का नहीं, नौजवानों का है; उस देश के नौजवानों का जिसमें अभिमन्यु और गोरा-बादल जैसे वीर पैदा हुये थे। जानते हो, युद्ध में जाते समय अभिमन्यु और गोरा-बादल की आयु क्या थी ? कुल अठारह बरस। तभी तो आज तक उनका नाम चला आ रहा है। नौजवानो, अपने देश की तो रीति रही है—बरस अठारह क्षत्री जीवे, आगे जीवे को धिक्कार..... ।"

जंगली कबूतर दाना देखते ही उस पर गिर पड़ता है शहरातू जानवर जरा पर तौल कर स्थिति भांपता है। गांव के नौजवान ऐसे व्याख्यान सुन कर उत्तेजना से तुरन्त भरती हो जाते थे परन्तु अनेक बार लेक्चर सुनते रहने वाले शहरी नौजवानों ने आपस में कनखियों से देश की राय बनानी चाही। भर्ती के अफसर ने खड़े होकर कागज कलम दिखा कर नौजवानों को उत्साहित किया। जो बहादुर नौजवान भर्ती होना चाहते हैं, वे यहां ही अपने नाम दे सकते हैं" पर सन्नाटा ही रहा।

शिवसिंह भी नौजवानों में बैठा था।

अफसर ने ललकारा—"देखें सबसे पहले कौन शेर-बच्चा नाम देता है ?"

सिंह साहब व्याख्यान देकर जंट साहब के समीप कुर्सी पर जा बैठे थे। जंट साहब उनके व्याख्यान की प्रशंसा कर रहे थे और सिंह साहब गरमी, जोर से बोलने और उत्तेजना के कारण आ गया पसीना रूमाल से पोंछते हुये जंट साहब की बात सुन रहे थे। शिवसिंह की आवाज सुन कर उन्होंने सामने देखा।

लड़का सीना ताने खड़ा कह रहा था—"सबसे पहिले हमारा नाम लिखिये ?"

सिंह साहब का कलेजा ऐसे छन्ना गया जैसे गरम लोहे पर बहुत ठंडा पानी पड़ गया हो।

"शाबाश ! शाबाश !" अफसरों ने सराहना की।

दो, चार, दस.....पैंतालिस लड़कों ने खड़े हो अपने नाम दे दिये। लड़कों के नाम और पते लिखे जा रहे थे। सिंह साहब के गरम पसीने पर ठंडा पसीना आ रहा था। शामियाने से मोटर तक जाने में भी उनके पांव डगमगा गये। वे छड़ी का सहारा लेकर अपने को संभाले मोटर में जा बैठे।

संध्या समय सिंह साहब कोठी के बरामदे में लगे पंखे के नीचे बैठकर मवक्किलों से बातचीत करते थे। उस समय भी मुंशी के साथ दो मवक्किल प्रतीक्षा कर रहे थे परन्तु सिंह साहब उस ओर देखे बिना भीतर चले गये और आराम-कुर्सी पर गिर

पड़े। दस मिनिट तक प्रतीक्षा करने के बाद मुंशी ने आ कर निवेदन किया—"हुजूर, भावां के ठाकुर साहब बैठे हैं।"

"कह दो, मुआफी दें। इस समय तबीयत ठीक नहीं है।" बीमार के से क्षीण स्वर में सिंह साहब ने उत्तर दे दिया। गहरी सांस लेकर सोचने लगे—यह सब अब किसके लिये करें ?

शिवसिंह सिंह साहब की संतानों में सातवां पर एक मात्र लड़का था। अनेक वर्ष के जप-तप और पूजा से छः कन्याओं के बाद यह एक पुत्र हुआ था और उसके बाद फिर कुछ नहीं। और बेवकूफ लड़के ने क्या कर दिया ! पूरे शहर के विरोध और मुर्दाबाद के नारों से भी सिंह साहब का हृदय न दहलता था। बेवकूफ लड़के ने उन की ललकार के उत्तर में आगे बढ़कर उन्हें दहला दिया।.....उनका एकमात्र पुत्र युद्ध की ज्वाला में कूद पड़ा। युद्ध की ज्वाला का धुआं उनके मस्तिष्क में भर गया, ...सैकड़ों तोपें दनादन आग उगल रही थीं। आग की लपटों और धुएं के निस्सीम विस्तार में सैकड़ों अदृश्य नौजवानों की चीखें सुनाई दे रही थीं। बमों के विस्फोट से उड़ने वाली धूल और मलबे के गुबार में नौजवानों के सिर, हाथ-पांव और धड़ उछल रहे थे। नगरों और गांवों में इन नौजवानों के मां-बाप और बहुएं छातियां पीट, सिर के बाल नोचकर, चिल्लाहट से विलाप करके बेहाल हो रहे थे। सिंह साहब की आंखों के सामने अपने घर में विलाप का दृश्य दिखाई देने लगा और कानों में हृदय-विदारक चीत्कार सुनाई पड़ने लगा। वे दोनों हाथों से सिर थामे बैठे थे।

"हजूर ! हजुर !" मुंशी जी के कई बार पुकारने पर सिंह साहब ने आंखें खोल उस ओर देखा, "हजूर डिप्टी कमिश्नर साहब फोन पर सलाम बोल रहे हैं। मुंशी जी ने फोन का चोगा उनके हाथ में दे दिया।

सिंह साहब ने सम्भल कर फोन में उत्तर दिया—"यस सर ! मैं सिंह बोल रहा हूं।"

डिप्टी कमिश्नर साहब ने बहुत उत्साह भरे शब्दों में शिवसिंह की वीरता देश-भक्ति और राजभक्ति की प्रशंसा करके उसे योग्य पिता का योग्य पुत्र बताया और विश्वास दिलाया कि वे आज ही गवर्नर साहब को इस विषय में लिख रहे हैं और उनका विचार सिंह साहब के लिए कैसरे हिन्द मैडल की तजवीज करने का है।

अपने चकराते हुए माथे को एक हाथ से दबाते हुए सिंह साहब ने उत्तर दिया—"यह आपकी कृपा है। लड़के ने केवल अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। मुझसे भी जहां तक बना सामर्थ्य भर यही करता रहा हूं।"

समाचार पत्रों में छपा कि शहर के मशहूर वकील निरंजन सिंह साहब ने अपने

पुत्र शिव सिंह को देश रक्षा के लिए सेना में भर्ती करा दिया। एक वकील का यह काम काग्रेसी वकीलों को अच्छा नहीं लगा पर उन्हें मान लेना पड़ा कि सिंह साहब सिद्धांत के पक्के हैं। वार रूम में अपने विरोधी अधिक होने के कारण सिंह साहब स्वयं बहस न छेड़ते थे। शिवसिंह के भर्ती हो जाने के बाद वे स्वयं देश भक्ति और देश-रक्षा के लिये युद्ध में सहयोग की बातें छेड़ने लगे।

सावरी साहब कम्युनिस्ट कहलाते थे। मुकद्मे कम होने के कारण बहस के लिए सदा तैयार रहते थे। सावरी साहब ने एतराज किया—"पर हमारा जन-धन देश-रक्षा में कहां खर्च हो रहा है? उत्तरी अफ्रीका, इटली और फ्रांस क्या हमारे देश हैं? हमारी सेनाएं वहां क्यों कटाई जा रही हैं……?"

सिंह साहब ने उत्तेजना से कहा—"हम कब कहते हैं कि हमारी सेनायें उत्तरी अफ्रीका, इटली, या सिंगापुर भेजी जायें? इसका आपको विरोध करना चाहिये। आप तो देश-रक्षा के लिये भरती होने का भी विरोध करते हैं।"

सावरी ने सिंह साहब को निरुत्तर करने के लिये पूछा, "आप भारतीय सेनाओं के विदेशी मोर्चों पर भेजे जाने का तो विरोध करते हैं न? हम उनके लिये सभा करेंगे। आप हमारा साथ देंगे?"

"जरूर!" सिंह साहब ने सीना फुला कर उत्तर दिया, "हमारे नौजवान अपने देश की रक्षा के लिए हैं। दूसरों के लिये वे अपने आपको संकट में क्यों डालें? आप ऐसा आंदोलन करें, हम हर तरह साथ देंगे···और उन्होंने देख लिया कि भार्गव साहब सुन रहे हैं; बात संध्या तक डिप्टी कमिश्नर के कानों तक पहुंच जायेगी। उनका अनुमान ठीक ही था। दूसरे दिन डिप्टी कमिश्नर साहिब को समाचार मिला कि शहर में एक सार्वजनिक सभा भारतीय सेना के विदेशी मोर्चों पर भेजे जाने के विरोध में होने वाली है और सिंह साहब उसमें सहयोग देंगे।

डिप्टी कमिश्नर साहब का संदेश पाकर सिंह साहब उनके बंगले पर पहुंचे। रास्ते भर वे साहस बटोरते गये कि वे अपनी बात निधड़क कहेंगे। हमीं लोग सरकार का साथ दे रहे हैं। यदि सभी लोग विरुद्ध हो जायं तो सरकार जनता की इच्छा के विरुद्ध कैसे जा सकती है। उनके मित्र पोपट साहिब वाइसराय की कौंसिल के मेम्बर थे। सिंह साहब ने उन्हें भी इस विषय में एक पत्र लिखने का निश्चय कर लिया। मन में आशंका यही थी कि नौदरहिल साहब अवसर पर बदतमीज़ी या डर दिखाकर भी काम निकाल लेने के लिये प्रसिद्ध थे। साहब के बंगले के बरामदे में कदम रखते समय सिंह साहब ने सोचा कि अगर साहब ने ऐसी वैसी हरकत की तो उन्हें भी ठकुराई का हाथ दिखाना पड़ेगा—हम किसी का दिया थोड़े ही खाते हैं।

साहब ने सिंह साहब को तुरन्त भीतर बुलवा लिया। साधारण से अधिक आत्मीयता से हाथ मिला कर कुर्सी दी। उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछा और फिर शिवसिंह की वीरता की प्रसंशा की--"उसमें ऊंचे वंश का रक्त है। उसकी वंश-परम्परा है। ऐसे घराने के लड़के यदि साधारण सिपाहियों के साथ शामिल होकर खाइयों में बरबाद हों तो उससे समाज और सरकार को उनकी प्रतिभा का लाभ नहीं हो सकता। घुड़दौड़ के घोड़े को कहीं लादी में लगाया जाता है ? इंगलैण्ड में भी खानदानी लड़के फौज में भरती होते हैं तो उन्हें मोर्चों पर कटवाया नहीं जाता। वे फौजी ओहदों पर रह कर व्यवस्था चलाते हैं। जंग शतरंज के खेल की तरह दिमागी चीज है। इसमें कटता प्यादा ही है, दिमागदार खान्दानी अफसर की तो शह होती है समझे आप !··· खैर शिवसिंह होनहार लड़का है. उसे उन्नति का अवसर मिलना चाहिये।

"मेरा ख्याल है, उसे भर्ती के महकमे में अफसर बनाया जाना चाहिये। तमाम फ़ौजी ताकत तो भरती की बुनियाद पर कायम है। इसी महकमे में वह कैप्टन, मेजर या कर्नल बन सकता है।" साहब ने सिंह साहब की आंखों में अनुमति के लिये देखा और बोले, "यदि आप समझते हैं कि लड़के की उम्र अभी कम है तो डाक्टरी मुआयने में उसे रहने दिया जा सकता है।"

सिंह साहब ने आंखें चुरा कर सांत्वना की सांस ली--"फिलहाल यही ठीक है।"

साबरी साहब ने भारतीय सेनाओं के विदेशी मोर्चे पर भेजे जाने के विरोध में सभा की परन्तु उस दिन सिंह साहब अपनी लड़की की बीमारी की खबर सुन कर आगरा चले गये थे।

× × ×

शिवसिंह ने जब से भर्ती में अपना नाम दिया था, वह शहर भर में अपनी वीरता की डींग मारने लगा था। कल्पना में वह अपने आप को अफसर की वर्दी में देखने लगा। उसे जब उम्र कम होने के कारण सिपाहीगीरी के अयोग्य बता दिया गया तो उसे अपना घोर अपमान लगा। सरकारी मदद के विश्वास पर वह फौजी डाक्टर के यहां लड़ने पहुंचा। यहां उसे उल्टी गाली मिली--"····· बाप से खुशामद करवा कर नाम कटा लिया, ऊपर से बहादुरी दिखाने आया है साले·····!"

शिवसिंह के लिये शहर में मुंह दिखाना असम्भव हो गया। उसे जान पड़ा कि उसका सबसे बड़ा शत्रु उसका पिता है। वह घर से गायब हो गया। एक मास बाद पिता को शिवसिंह का पत्र रानीखेत छावनी से मिला कि वह फिर सेना में भर्ती हो गया है और यदि इस बार उसका नाम कटाने की कोशिश की गई तो वह ज़हर खा

लेगा । सिंह साहब माथा ठोक कर रह गये, करम गति टारे नहीं टरे……।

सिंह साहब का राजभक्ति का उत्साह और उसके साथ ही धन कमाने का भी उत्साह फीका पड़ गया । अब एक ही चिन्ता सिंह साहब और शिवसिंह की बूढ़ी माता को थी । उनके यहां निरन्तर कोई न कोई पंडित शिवसिंह के लिये मृत्युंजय मंत्र का पाठ करता रहता था ।

सिंह साहब अखबार में केवल एक बात देखते कि युद्ध जल्दी समाप्त होने की क्या सम्भावना है ? अपने शहर में ही नहीं, देश भर के ज्योतिषियों से वे इस बारे में गणना करवाते रहते थे । सभी जगह से उन्हें युद्ध जल्दी समाप्त हो जाने और शिवसिंह के सकुशल लौट आने का आश्वासन मिलता था परन्तु डेढ़ वर्ष तक मृत्युंजय मंत्र का पाठ कराते रहने के बाद भी उन्हें शिवसिंह के उत्तरी अफ्रीका में वीरगति प्राप्त हो जाने का ही समाचार मिला ।

शिवसिंह की रोगी माता पुत्र की मृत्यु के समाचार का आघात नहीं सह सकीं और सात ही दिन के भीतर चल बसी । सिंह साहब भी इन घटनाओं से प्रायः जड़ और संज्ञाहीन हो गये थे परन्तु अपना आत्मसम्मान बनाये रखने के लिये उन्होंने आंखों से आंसू न गिरने दिये ।

युद्ध की समाप्ति पर विजय का दरबार किया गया । सिंह साहब को विशेष निमंत्रण मिला । उनके शरीर और मन की अवस्था कही जाने लायक न थी परन्तु वे आत्म-सम्मान की रक्षा के लिये छड़ी टेकते हुये दरबार में गये ।

गवर्नर साहब ने युद्ध के समय सरकार की सेवा और सहायता के लिए 'कैसरेहिन्द' तगमा उनके सीने पर अपने हाथ से लगाया । सिंह साहब की पिंडलियां कांप रही थीं । उन्होंने धैर्य से गवर्नर साहब को धन्यवाद दिया परन्तु तगमा लगवाकर कुर्सी पर बैठ जाने के बाद तगमे की चोट से वे दुबारा स्वयं उठ न सके । वे कुर्सी पर मूर्छित हो गये ।

जिस समय सिंह साहब के बंगले पर उनके मूर्छित शरीर को गाड़ी से उतारा जा रहा था, उन्हें होश आ गया । भीड़ देखते ही परिस्थिति समझ गये । उन्हें अपना आत्म-सम्मान ढहा जाता दिखाई दिया । उनका चेहरा सहसा कठोर हो गया । अपने सीने पर चमकते तगमे को हाथ में जोर से दबा कर वे चिल्ला उठे—"बरस अठारह छत्री जीवे, आगे जीने को धिक्कार……।"

मिट्ठो के आंसू

गजमोक्ष मंदिर के पुजारी हलधर पंडित का छोटा पुत्र सुदामा सोलह वर्ष का हो गया था। मिडिल की परीक्षा में दो बार धकेला जाने पर भी वह उसे पार नहीं कर पाया तो अखाड़े-बाजी और रासलीला में ही अधिक मन लगाने लगा। पुजारी जी अपने बड़े पुत्र को पढ़ा-लिखा कर बाबू बना देने का पश्चाताप कर रहे थे। मंदिर के भविष्य का ख्याल कर चुप रह गये।

सुदामा का बड़ा भाई बलराम मैट्रिक पास कर पुजारी की जीविका से लजाने लगा था। पुजारी जी पर कृपा रखने वाले एक यजमान की दया से वह तार घर में नौकरी पा गया था और मंदिर छोड़ शहर के एक मुहल्ले में जा बसा था। पुजारिन कई बरस पहले ही वैकुंठ सिधार गयी थीं। बड़ा लड़का बहू को लेकर दूर चला गया तो पुजारी जी को सूना-सूना लगने लगा। सुदामा को उसके अखाड़े और रासलीला के साथी घेरे रहते थे। इससे हलधर पंडित को क्या संतोष होता? वे छोटे लड़के के लिये बहू खोज कर अपना घर फिर से बसाने की चिन्ता करने लगे। दो बरस तक यह यत्न करते-करते यमराज के यहां उनका भी खाता पूरा हो गया। संसार को और बसा सकने की चिंता में उन्हें स्वयं ही यह संसार छोड़ देना पड़ा।

पिता का हाथ सिर पर से हट गया तो सुदामा को निर्वाह की कठिनाई अनुभव होने लगी। कुछ समय का प्रभाव समझिये कि यजमानों के यहां से सीधा ले आने में पुजारी के लड़के को अपनी जवानी की हेठी जान पड़ती थी। और जाने से बनता भी क्या? जब गल्ला रुपये का बीस सेर का मिलता था, यजमान उदारता से सीधे में थाली भर आटा, दाल और आधी छटाक घी, नमक भी दे देते थे। अब गल्ला ढाई-तीन सेर के भाव बिक रहा था। यजमान चुटकी भर आटा देकर ही पुण्य ले लेना चाहते थे। सुदामा को कई बार खयाल आया कि जब भगवान की सेवा का फल ही नहीं तो उन्हें अपने भरोसे छोड़ कर जहां सींग समाये चल दे पर पुरानी जगह

की ममता थी। मंदिर का अखाड़ा उसी का बनाया हुआ था। उसे मानने-पूछने वाले पांच-सात लड़के वहां आते थे। उसी का इकट्ठा किया रामलीला और जन्माष्टमी की झांकी का सामान भी था। नयी ब्यायी अपनी गैया थी। किसी यजमान ने एक बछिया पुजारी को गोदान में दे दी थी। वह आस-पास के खुले मैदानों में चर कर खूब पुष्ट हो गयी थी। सुदामा उसके लिये पास-पड़ोस के खतों से हरा चारा भी झटक लाता था। पानी तो कुएं से खींच कर पिलाता ही था, नहला भी देता। अब वह एक बछड़े की मां 'गौमाता' बन गयी थी। चितकबरा बछड़ा भी कूदता-फांदता खूब प्यारा लगता था। सुदामा ने उसके गले और खुरों में घुंघरू बांध दिये थे। भाग्य की बात, उसी बरस बरसात में मंदिर के हाते में पुजारी की कोठरी गिर गयी थी। सुदामा मूर्ति के मंडप पर बनी बारादरी में ही रहने लगा था।

स्कूल की शिक्षा न पा सकने पर भी सुदामा जड़ बुद्धि नहीं था। उसने देखा जिन मंदिरों में कीर्तन होता है, उनकी ओर भक्तों का आकर्षण अधिक रहता है। उसने भी कीर्तन आरम्भ कर दिया। उसका गला अच्छा था। कुछ लोग शहर से कुछ दूर चल कर भी, कीर्तन के लिये गजमोक्ष के मंदिर में आने लगे। उसने संध्या समय ठंडाई घोट देने की भी व्यवस्था कर दी थी। भक्तों के नहाने के लिये जल खींच देता था। लोगों को ऐसा जान पड़ने लगा कि मन्दिर के कुएं का जल दूसरे कुओं से अधिक ठंडा है। गरमियों में संध्या समय कुछ भीड़ हो जाने लगी। एक-दो खोमचे वाले भी पहुंचने लगे। उस वर्ष गजमोक्ष के मंदिर की रासलीला भी खूब जमी।

बरस ही भर में गजमोक्ष का मन्दिर बहुत चेत उठा। शहर से स्त्रियों की टोलियां भी पूजा के लिये जाने लगीं। पहले बुढ़िया, तब जवान और फिर बहुएं और लड़कियां भी जाने लगीं। पूजा के समय सुदामा स्नान कर कमर में धोती का फेंटा कसे, तेल लगे घुंघराले बाल कंधे तक छिटकाये, मूर्ति के चरणों में बैठा चढ़ावा स्वीकार करता और प्रसाद बांटता रहता। उसके खुले, कसरत से कसे चौड़े सीने पर कोमल, काले घुंघराले बाल उठ रहे थे। उसके नवयुवा, मसे भीगते चेहरे और पुष्ट डौलों को देख कर कई अलबेली भक्तिनों के मन में गोपी-भाव जाग उठता। वे उसे ऐसी चितवन से देख जातीं कि सुदामा को याद आता रहता और बेचैनी अनुभव होती। तब उसे मिट्ठो की याद आ जाती। वह सड़क के पूरब बिन्द्रा काछी के यहां से तरकारी के लिये कोई लौकी, तुरई या मूली ले आने के लिये चल देता।

मिट्ठो बिन्द्रा काछी की बहू थी। मन्दिर से पूरब, सड़क पार सौ कदम पर बिन्द्रा की कछियारी थी। आधा बीघा जमीन में वह तरकारी और फूलों की खेती करता था। बिन्द्रा के लड़के के ब्याह में कर्ज अधिक हो गया था इसलिये लड़का एक

तेल मिल में नौकरी करने लगा था। फिर कानपुर में अच्छी मजदूरी पाकर वहां चला गया था। कभी महीने-पखवाड़े एक दो दिन को घर आ जाता था। उम्र उसकी कम ही थी परन्तु बदन सूखा-सूखा और गाल धंसे होने से बेरौनक सा लगता था। नशे-पानी की आदत से कमजोर भी हो गया था। बिन्द्रा को गठिया का रोग था। मिट्ठो की सास सुबह ही तरकारी लेकर शहर चली जाती और तीसरे पहर लौटती। कछि-यारी का काम मिट्ठो पर ही था।

मिट्ठो कभी-कभी पुजारी जी की गैया का गोबर ले जाती थी। हलधर देख लेते तो हल्ला करने लगते थे—"गोबर कहां ले जा रही है? क्या सेंत का गोबर है? हम क्यारी में से एक भिंडी तोड़ लें तो बिन्द्रा लट्ठ ले के दौड़ता है।"

मिट्ठो पांचवें-छठें तरकारी दे जाती या सुदामा जाकर ले आता। तरकारी के लिये मिट्ठो और सुदामा में तकरार भी होती। इसलिये नहीं कि तरकारी से सुदामा का संतोष नहीं होता था, यों ही जरा चुहुल के लिये।

पुजारी के वैकुंठ सिधार जाने के बाद भी मिट्ठो तरकारी लेकर जाती थी—"देखें तो, क्या लाई हो?" सुदामा उसकी झोली में हाथ डाल देता, "हमें नहीं चाहिये भिंडी। हम घुइयां लेंगे।"

"हाय, इस बखत कहां है घुइयाँ?" मिट्ठो मुस्कारा देती।

"ये क्या छिपा रखी हैं!" सुदामा छेड़खानी करने लगता।

मिट्ठो झल्लाती—"हम हल्ला कर देंगे। क्या हो रहा है तुम्हें? देखते नहीं सूरज भगवान देख रहे हैं।"

सुदामा के अनुरोध से या मिट्ठो के आमंत्रण से एक पहर रात गये दोनों सड़क के उस पार इमली के पेड़ के नीचे मिले। फिर सुदामा ने समझाया—"रात में कौन रहता है? वहीं आ जाना।"

कभी सुदामा मिट्ठो को दिन में कह देता या कभी वह स्वयं ही रात में आ जाती।

× × ×

सन् १९४० में अंग्रेज साम्राज्यशाही योरुप में हिटलरशाही से तोप-तलवार से लड़ रही थी। युद्ध में इस देश की जनता और साधनों का उपयोग कर सकने के लिये उन्हें यहां भी कूटनीति का युद्ध करना पड़ रहा था। जनता को भूख से व्याकुल कर, युद्ध के मोर्चे पर ला सकने के लिये अन्न-वस्त्र भी खूब महंगा हो जाने दिया गया। महंगी में ऊंचे दाम पा सकने के लिये सभी पदार्थ बाजार से लोप हो गये। यहां तक कि सरकार को युद्ध की आवश्यकता के लिये गल्ला, लोहा और कपड़ा मिलना कठिन हो गया।

अन्न-वस्त्र की अभूतपूर्व महंगाई के कारण देश में अराजकता फैल जाने की संभावना हो गई इसलिये अन्न-वस्त्र की बिक्री और दामों पर कंट्रोल लगा दिये गये। नये-नये दफ्तर खुल रहे थे। अकाउण्ट के दफ्तर के सुपरिटेंडेंट नार्टन साहब जिले के राशनिंग अफसर तैनात हुए। अपना दफ्तर ठीक से चला सकने के लिये नार्टन साहब ने अपने अनुभवी और स्वामिभक्त हेड क्लर्क गजपत बाबू की बदली अपने यहां करवा कर उन्हें अपना पर्सनल असिस्टेंट बनवा लिया।

गजपत बाबू ने अपने जीवन के बीस वर्ष अकाउण्ट दफ्तर में क्लर्की करते बिता दिये थे। उनकी चालीस वर्ष की आयु हो जाने तक भगवान ने अपनी असंख्य संतानों की भांति उनकी ओर भी विशेष ध्यान दिया था। तीस रुपये मासिक की नौकरी पर वे क्लर्क भरती हुए थे। पहले ढाई रुपया वार्षिक और फिर पांच रुपया तरक्की पाते-पाते वे बड़े बाबू की कुर्सी और दो सौ रुपया मासिक के योग्य हो गये थे। गजपत बाबू ने भगवान की ओर से विशेष प्रोत्साहन न पाकर सरकार के प्रतिनिधि, अपने दफ्तर के अंग्रेज असिस्टेंट सुपरिटेंडेंट के प्रति ही भक्ति और श्रद्धा दिखाई। उनके कोई गलती न करने पर भी साहब उन्हें गलती से 'स्टुपिड' कहकर धमका देते तो भी वे 'यस सर' कह कह कर अपनी भूल स्वीकार कर लेते। साहब बाबू जी की इस योग्यता की कद्र कैसे न करते !

युद्ध के समय व्यापारी कपड़े, लोहे और सीमेंट के चढ़े हुए दामों से दोनों हाथों मुनाफा समेट रहे थे। सरकार ने उनके मुनाफे की गंगा में कंट्रोल का बांध खड़ा कर दिया ताकि सरकार की आवश्यकताएं पहले पूरी हो सकें। कंट्रोल के इस बांध की रखवाली कर रहे थे नार्टन साहब और उनकी सहायता के लिये थे गजपत बाबू। सेठ जी पन्द्रह मिनट के सौदे में बीस हजार कमा सकते थे परन्तु खरीदने और बेचने की परमिट के बिना कैसे होता। सेठ लोग कपड़े, लोहे सीमेंट की खरीद-फरोख्त की परमिटों के लिये गिड़गिड़ाने लगे और परमिटों की दरख्वास्त के नीचे सौ-दो-सौ के नोट रख कर बाबू जी को थमाने लगे। साहब को इतनी फुर्सत कहां थी कि पूरी फाइलें पढ़ते। मंजूरी और इंकार के हुक्म गजपत बाबू ही लिखते थे। साहब मुंह में सिगार दबाये दस्तख्त की मशीन की तरह हुक्म पास करते जाते थे।

बाजार में दाम बढ़ जाने से गजपत बाबू की तनखाह के रुपयों का दाम चौथाई भी न रह गया था। उस समय स्वयं चले आते इस धन को वे कैसे ठुकरा देते ? इस धन को ठुकराने से वह दुगुना होकर उनके चरणों पर गिरता था। सेठ लोग उन्हें अन्नदाता पुकार कर पांच सौ-हजार के नोट थमा कर दया की भीख मांगते थे। इसे गजपत बाबू अपने पिछले जन्म के पुण्य का फल और भगवान की कृपा के अतिरिक्त

और क्या समझते ? भगवान ने अवेर से ही सही, उनकी सुध ली । सरकार से उन्हें जो तनखाह मिलती थी उसके लिये वे सरकार का काम करते थे । सेठ जी को पचास हजार बटोर लेने का अवसर देकर यदि वे इस सहायता के लिये हज़ार स्वीकार कर लेते थे तो इसमें अंधेर क्या था ?

गजपत बाबू को भगवान की इतनी बड़ी कृपा सम्भाल लेने का अभ्यास न था । यह बल पाने के लिये उन्हें भगवान से विशेष सहायता की आवश्यकता थी । डेढ़ वर्ष के समय में ही सवा लाख से अधिक जमा हो गये रुपये के भय के बोझ से उनकी सांस रुकने सी लगती थी । गजमोक्ष के मन्दिर की ओर फैलती बस्ती में उन्होंने जमीन का एक टुकड़ा लेकर बड़ा सा मकान भी बनवाना शुरू कर दिया था । इस मकान को देख कर दूसरे लोगों को आश्चर्य होता था परन्तु गजपत बाबू को भय लगता । अपने आपसे अनुभव होने वाले भय का एक ही समाधान था कि वह सब भगवान की इच्छा और कृपा है । ज्यों-ज्यों उनका गुप्त धन बढ़ रहा था, उसके बोझ से इन का शरीर सूखता जा रहा था । वे सांस-सांस में भगवान का स्मरण करने लगे परन्तु इससे भी संतोष न होता । उनका मन चाहता कि सहारे के लिये भगवान के चरण पकड़ लें । वे मन्दिर जाने लगे । मन्दिर में भगवान के दर्शन से ही मन न भरता; इच्छा होती भगवान के सामने लोट कर उनको पुकारें परन्तु मुहल्ले के मन्दिर में परिचितों के सामने भक्ति की विह्वलता दिखाते भी संकोच होता था । वे लोक दिखावे के लिये भक्ति नहीं करना चाहते थे । गजपत बाबू भगवान के चरणों में एकान्त पाने के लिये कभी एक मन्दिर में जाते और कभी दूसरे में ।

गजमोक्ष का मन्दिर शहर से जरा हटकर होने के कारण पुजारी सुदामा भक्तों की सुविधा का विचार कर नौ बजते-बजते कीर्तन और आरती समाप्त कर देता था और मन्दिर में सन्नाटा हो जाता था । गजपत बाबू कीर्तन समाप्त होने के समय गजमोक्ष के मन्दिर में आये और एक ओर चुप बैठकर भजन करने लगे । आरती भी हो गयी पर बाबू मौन बैठे भजन करते रहे । सुदामा नित्य की तरह मन्दिर की बारादरी का जंगलेदार दरवाजा बन्द न कर सका । वह एक ओर बैठ कर सुरती मलने लगा कि बाबू का भजन समाप्त हो जाय । देर तक भजन समाप्त नहीं हुआ तो उसे खलने लगा । उसने उस रात मिट्ठो को आने के लिये कहा था । वह उसकी राह की ओर देख रहा था ।

आंखें मूंदे बाबू का भजन समाप्त नहीं हुआ । पिछवाड़े की ओर से मिट्ठो आती दिखाई दी । सुदामा ने उस ओर जा मिट्ठो का हाथ थाम कर उसे चबूतरे पर चढ़ा लिया और धीमे से कहा—"यह कोई एक लम्बा भजन करने वाला है । देर से बैठा

है। बस अब जाता ही होगा, तू आ जा। खम्भे की ओट में बैठ जा। ले तब तक सुरती मल कर खा।"

गजपत बाबू को भजन करते कुछ और समय बीत गया। भजन समाप्त कर वे मन्दिर से चले जाने के बजाय मूर्ति के सामने साष्टांग लेट गये और रुआंसे स्वर में बोलने लगे—"हे भक्तवत्सल मुरली मनोहर, गोपियों के प्यारे, गौवों के रखवारे, कुब्जा को तारने वाले मेरी रक्षा करो। हे जगतारण, राधामोहन मैं बड़ा पापी और खलकामी हूं। मुझ पाप से उबारो। मेरी रक्षा करो।" बाबू ज्यों-ज्यों भक्ति-विह्वल होते जाते उनका क्रन्दनपूर्ण स्वर ऊंचा होता जाता। औंधे मुंह लेटे वे चिल्लाने लगे, "हे द्रौपदी के लाज के बचैया, शरणागत के रखैया, मुझे पाप के मगर ने पकड़ लिया है, मेरा उद्धार करो!" भक्त बहुत ऊंचे स्वर से चिल्लाने लगा। मिट्ठो को लगा कि लोग इकट्ठे हो जायंगे। वह डर के मारे उठ कर भाग गई। सुदामा बेबसी में दांत किट-किटाकर रह गया।

सुदामा का ख्याल था कि बाबू की भक्ति-विह्वलता केवल एक ही रात की बात है। पहले भी एकाध भक्त, रात भर जप के लिये मंदिर में बैठ चुके थे। यह बाबू नियम से आने लगे और उनके भक्ति-विलाप का समय और सुर बढ़ता जा रहा था। सुदामा अखाड़ा करने वाला कसरती आदमी था। उसे नींद भी जोर की आती थी। उसकी आधी रात तक की नींद गई। चौथे-पांचवें मिट्ठो का आना हो जाता था सो वह भी गया पर भक्त से क्या कहे? भक्त ही तो उसके अन्नदाता थे।

सुदामा मिट्ठो से मिला तो उसने भी उपालम्भ दिया—"वाह, हमें बुलाकर यों ही हलकान किया। उस मुए को रोज बैठा लेते हो। परसों हम फिर आईं तो फिर बैठा था। हम डर के मारे भाग आईं।"

"रोज ही आ बैठता है। अच्छी परेशानी हो गई। सोने भी नहीं देता।" सुदामा ने स्वीकार किया।

"दाढ़ीजार को डांट क्यों नहीं देते? कह दो, मत आया करो यहां।" मिट्ठो ने सुझाया।

"यह कैसे हो सकता है। भक्तों को कहीं डांटा जाता है। ऐसा करें तो मंदिर में कोई आये क्यों।" सुदामा ने चिन्ता प्रकट की।

"तो हम बतायें," मिट्ठो ने सलाह दी, "मुआ रात को लौटने लगे तो पीछे जा बड़े-बड़े पत्थर आस-पास फेंकने लगना। समझेगा, रास्ते में भूत लगता है। खुद ही नहीं आयेगा।"

सुदामा सुनकर चुप रह गया। सोचता रहा और बोला—"अच्छा, आज सही।

तू आकर देखना। जरा अवेर से आना जब यह मूर्ति के सामने लेट कर चिल्लाने लगता है तब।"

अगले दिन सुदामा आरती समाप्त कर कीर्तन के झांझ, खड़ताल और ढोलकी समेट रहा था कि गजपत बाबू आ गये। सुदामा ने समझाना चाहा—"बाबूजी, बड़ी रात गये तक भजन करते रहते हैं। नींद नहीं ले पाते हैं इसी से तो आपका बदन झटकता जा रहा है। जरा जल्दी आ जाया कीजिए।"

अपनी भक्ति के इस बखान से संतुष्ट होकर गजपत बाबू ने उत्तर दिया—"भैया, भक्ति किसी को दिखाने के लिए तो नहीं करनी। इस शरीर की माया का क्या है? भगवान जितनी जल्दी अपने चरणों में स्थान दे दें, उनकी दया है। गोपीवल्लभ से यही प्रार्थना है कि इसी छिन हमें अपने में लीन करलें।" सुदामा चुप रह गया।

मिट्ठो आई और देखा कि भक्त आंखें मूंदे एक ओर बैठे भजन कर रहे हैं। सुदामा कहीं दिखाई नहीं दिया। वह बारादरी के एक खम्भे की आड़ में खड़ी होकर सुदामा की प्रतीक्षा करने लगी।

बाबू भजन समाप्त कर मूर्ति के सामने साष्टांग लेट गये और पुकारने लगे—'ऐ गिरधारी, नटवर बनवारी मुझ पापी को अपने चरणों में शरण दो!" उनका विह्वल स्वर ऊंचा होता जा रहा था। सूना मंदिर उनकी करुण पुकारों से गूंजने लगा।

मिट्ठो धोती की खूंट दांतों में दबाए विस्मित चुप खड़ी थी। बाबू ने और जोर से पुकारा—"हे भक्तों के पापों को हरने वाले! अधमों का उद्धार करने वाले! मुझे अपने में विलीन कर, इस मायामय संसार से मोक्ष दो।"

मिट्ठो को मंदिर के मंडप में धरी छोटी मूर्ति के पीछे एक और बहुत बड़ी मूर्ति दिखाई दी। वह घबराहट में चीख कर भागना ही चाहती थी कि सुनाई दिया—"ऐ मेरे प्यारे भक्त, मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हूं। मैं तेरी पुकार सुनकर स्वर्ग के कदम्ब वन से आया हूं"

बाबू का विह्वल क्रन्दन रुक गया। जमीन पर औंधे पड़े-पड़े उन्होंने गिरगट की तरह सिर उठाकर मूर्ति के मण्डप की ओर देखा। मुरली मनोहर की छोटी सी मूर्ति ने बढ़कर पूरे जवान का रूप ले लिया था पर वही श्यामल रूप, मोर मुकुट, कर में मुरली, उर में माल और कमर में पीताम्बर!

गजपत बाबू सन्न रह गये। पलक भी न झपक सके।

मूर्ति ने करुणा से मुस्कराकर कोमल स्वर से कहा—"ओ मेरे भक्त, मैं भक्तों का भक्त हूं। तेरी पुकार सुन तेरी इच्छा पूर्ण कर के लिये आया हूं। आ प्यारे, तू मुझ में विलीन हो जा। मैं तेरी आत्मा को अपने विमान में स्वर्ग ले जाऊंगा।"

भगवान बाहें फैलाये गजपत बाबू की ओर एक कदम बढ़ गये ।

गजपत बाबू की आंखें फटी की फटी रह गई । उनका शरीर थरथर कांप रहा था । हाथ जोड़े, घिग्घी बंधे गले से बड़ी कठिनाई से बोले—"भगवान, भगवान क्षमा कीजिए !·····अ अ अभी नहीं ! अ अ कृपालु, मेरा मकान अभी पूरा नहीं हुआ । अ अ अभी एक भी लड़की का ब्याह नहीं हो पाया·····!"

भगवान के माथे पर क्रोध की त्योरियां पड़ गई । भगवान ने अपने हाथ की मुरली से बाबू की ओर संकेत कर कड़े स्वर में डांटा—"निकल जा यहां से ! तू मेरा भक्त नहीं । तू छलिया है । यमदूत तुझे रौरव नरक में ले जायंगे ।" भगवान मुरली को बाबू की ओर ताने क्रुद्ध खड़े रहे ।

गजपत बाबू ने साष्टांग लेटे अपने शरीर को जैसे-तैसे सम्भाला और मंदिर के द्वारा की ओर दौड़े । वे दहलीज से ठोकर खा गिर पड़े । यह देखकर भगवान मूर्ति के मण्डप से निकल कर आये और गिरे हुए बाबू को सम्भालने लगे ।

बाबू बेहोश हो गये थे ।

"अरी जरा जल तो ला । लोटे में है ।" खम्बे के पीछे खड़ी मिट्ठो ने सुदामा की पुकार सुनी । वह पानी लेकर आई ।

"मुए को बहुत चोट तो नहीं आ गई" मिट्ठो ने घबराहट में पूछा ।

सुदामा ने बाबू के मुंह पर छींटे मारे पर वे होश में नहीं आये ।

"तू इसे आंचल से हवा कर । मैं अभी आता हूं ।" सुदामा ने कहा ।

मिट्ठो बाबू को हवा करती रही ।

सुदामा रासलीला का सिंगार उतार कर आया । बाबू को अब भी होश नहीं आया था । सुदामा घबराने लगा—"इसे कुछ हो गया तो ?"

"क्या जाने ?" मिट्ठो ने चिंता में साथ दिया । कुछ देर में वह चली गई ।

घण्टे भर बाद बाबू को होश आया । नंगे सीने हृष्ट-पुष्ट युवक को अपने समीप बैठे अपनी ओर देखते देखकर बाबू चीख उठे—"यमदूत ! यमदूत ! हे भगवान् बचाओ । मैं जालिया नहीं ।" बाबू बेहोश हो गये ।

"डरो मत बाबू । भगवान् नहीं थे । अरे हम थे, हम ! हमने स्वांग रचा था । डरो मत । हम यमदूत नहीं । हम सुदामा पुजारी हैं ।" बाबू बेहोशी में सुन न सके । सुदामा और भी घबरा गया, क्या करे । उसे बाबू का मकान भी मालूम न था । सामने आदमी बेहोश पड़ा था । उसे नींद भी कैसे आती । यही चिंता खाये जा रही थी कि कहीं उन्नीस-बीस हो गया तो ?

बाबू को एक बार फिर होश आया और वे फिर चिल्ला उठे—"यमदूत ! यमदूत !

बचाओ भगवान ! नहीं, मैं छलिया नहीं…"

सुदामा ने समझाना चाहा पर बाबू ने सुना नहीं और बेहोश हो गये।

कोतवाली से तीन बजे का घड़ियाल बज रहा था। सामने से कुछ आदमी लालटेन और बिजली की टार्च लेकर आते दिखाई दिये। बाबू का बड़ा लड़का मुहल्ले के तीन आदमियों को लेकर उन्हें खोजता आया था। बाबू के गिरने और बेहोशी पर सब विस्मित हो रहे थे।

सुदामा स्वांग बनाकर बाबू को डरा देने की बात इनसे कैसे कहता ? इतने में बाबू ने आंखें खोलीं। अपने को कई आदमियों से घिरा देखकर और भी अधिक भयभीत होकर चिल्ला उठे—"यमदूत ! यमदूत ! बचाओ, भगवान बचाओ ! मैं छलिया नही।"

सुदामा ने बताया कि बाबू नित्य बहुत रात गये तक भजन-भक्ति करते रहते थे। वह तो सो जाता था, वैसे ही वह सो गया था। बाबू के चिल्लाने से नींद टूटी तो देखा भागे जा रहे हैं और दहलीज से ठोकर खाकर गिर पड़े। हम दौड़कर पहुंचे, तब तक बेहोश हो गये थे। होश आता है तो बड़बड़ाने लगते हैं।

इतने में बाबू फिर चिल्ला उठे—"भगवान ! बचाओ बचाओ, यमदूत आ गये ! मैं छलिया नहीं। तुम्हारा भक्त हूं। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।"

गजपत बाबू के पुत्र के साथ आये बनवारी ने सब लोगों की ओर देख निश्चय से कहा—"क्या कहते हो ? हम कहते हैं कि बाबू को भगवान ने दर्शन दिये जान पड़ते हैं। बाबू भक्ति भी तो बहुत करते थे या भगवान ने बाबू की परीक्षा ली हो या डर गये हों।" इसके अतिरिक्त और अनुमान भी क्या हो सकता था। एक खाट लाई गई और बाबू को उनके मकान पर पहुंचाया गया।

समाचार बिजली की तरह शहर में फैल गया। हजारों की भीड़ भगवान का दर्शन पाये भक्त का दर्शन करने आने लगी। हजारों की भीड़ गजमोक्ष मंदिर में दिन भर जमा रहने लगी। चढ़ावा इतना आने लगा कि मंडप में समा न सकता था। गजपत बाबू के भगवद्-दर्शन पाने का प्रामाणिक वर्णन अखबारों में छप गया। बाबू बहुत तन्मयता से नित्य-विह्वल हो भगवान को पुकारते थे। आधीरात मंदिर में बंशी की ध्वनि गूंज उठी। पुजारी सुदामा भी जाग उठा। भगवान ने भक्त को उसी समय मोक्ष देने की इच्छा प्रकट की परन्तु भक्त का माया-मोह टूटा न था इसलिये भगवान उसे छोड़कर चले गये।

गजपत बाबू का इलाज करने के लिये बुलाये गये डाक्टरों की राय थी कि किसी प्रबल मानसिक आघात से बाबू का मस्तिष्क विकृत हो गया है। उन्हें तेज स्वर हो

था । ऐसी अवस्था में ही वे तीसरे दिन, यमदूतों के अपने चारों ओर मंडराने की कल्पना करते और भगवान को पुकारते-पुकारते वैकुंठ सिधार गये ।

गजमोक्ष के मंदिर में भगवान् के प्रकट होने का समाचार देहात और दूसरे शहरों में पहुंच गया । भक्त राजस्थान, पंजाब और सिंध से आ-आकर सोने के छत्र चढ़ाने लगे । मंदिर का जीर्णोद्धार हो गया । चबूतरा चारों ओर बीस-बीस हाथ बढ़ गया । छः मास बीतते-बीतते आसपास कुछ दुकानें भी बन गईं । एक सेठ ने एक गांव की आमदनी मंदिर के नाम कर दी । उससे सैकड़ों भिखारियों को प्रसाद बांटा जाने लगा था ।

मंदिर में अपरिमित धन बरस रहा था परन्तु सुदामा उसकी ओर से उदास था । वह मंदिर के बारादरी के किसी खम्बे से पीठ सटाये बैठा अपने छल का परिणाम देखता रहता पर बोल न पाता । भोजन भी कोई खिला देता तो खा लेता । लोगों का विश्वास था कि उसे भगवान के दर्शनों की झलक मिल चुकी है । वह भगवान की लौ में चुप रहता है । उसे भूख प्यास क्या ? भक्त लोग उसकी प्रशंसा में कहते—"जिसने भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया, उसे माया क्या लुभायेगी ।"

सुदामा का बड़ा भाई तार घर में नौकरी कर रहा था । उसने यह अवस्था देखी तो भगवान की सेवा के लिए नौकरी छोड़कर मंदिर में आ बसा । अब उसके लिये पक्का मकान बन गया था ।

अब मंदिर में फूलों की बिक्री बहुत अधिक होती थी । मिट्ठो के अतिरिक्त और भी पांच-सात फूल बेचने वाले सुबह ही आ जाते । मिट्ठो का दिल भारी-भारी रहता । उस रात के बाद मंदिर में ऐसा मेला लगने लगा कि उसे सुदामा से बात करने का मौका ही नहीं मिलता था । कभी आंखें चार हो भी जातीं तो मिट्ठो को सुदामा की आंखें बुझी-बुझी दिखाई देतीं, जैसे वह पहचान ही न रहा हो । उसका बदन भी सूखता जा रहा था । मिट्ठो का मन कट-कट कर रह जाता था । वह मन ही मन कहती—इसके मन पर आदमी की जान का बोझ है । काहे मैंने वैसी बात कही थी ।

गजमोक्ष के मंदिर में भगवान के प्रत्यक्ष होने की घटना के ठीक एक वर्ष बाद सुदामा आधीरात बारादरी के खम्बे से पीठ लगाये बैठे-बैठे निष्प्राण हो गया ।

भक्तों ने कहा—"भक्तराज सुदामा अपने भगवान का भजन करता हुआ भगवान के धाम सिधार गया ।"

भगवान का दर्शन पाये पुजारी की वैकुंठ यात्रा की तैयारी हुई । विमान फूलों से लद गया । आगे-आगे बैंड बज रहा था । घंटे, घड़ियालों और शंखों की ध्वनि हो

रही थी। कीर्तन करती टोलियां आगे-पीछे चल रही थीं। मंदिर से नदी तक दो मील का मार्ग 'भक्तराज सुदामा की जय !' पुकारती भीड़ से भर गया था। इस मृत्यु से किसी को शोक न था, किसी की आंखों में आंसू न थे। भीड़ उत्साह से उमड़ रही थी।

केवल मिट्ठो मंदिर के चबूतरे की सीढ़ियों के नीचे आंचल में मुंह छिपाये फफक-फफक कर आंसू बहा रही थी।

तीस मिनिट

रत्ना के पति बाबूराम गुप्त दफ्तर जाने के लिये घर से निकल कर गली के बाहर हुए ही थे कि सिन्हा का नौकर साइकिल पर आया। वह बोला कुछ नहीं, चारों ओर नजर डालकर उसने अपनी खाकी गांधी टोपी की तह में से एक पुर्जा निकाला और रत्ना को थमा कर तुरंत लौट गया।

रत्ना ने पुर्जा पढ़ा। शरीर सनसना गया। सिर चकराने लगा। उसने पुर्जा महीन-महीन नोच दिया और मुट्ठी में लिये आंगन के पार रसोई घर की ओर गई। नौकर चूल्हे पर देगची चढ़ाकर कनस्तर से आटा निकाल रहा था।

"आंच इतनी तेज क्यों कर देता है ?" रत्ना ने झल्लाहट दिखाई। लकड़ियों को बाहर खींचते हुए उसने पुर्जे के टुकड़े आग में डाल दिये, "तुझे कई बार समझाया है कि तेज आंच में सब्जी बिगड़ जाती है।" कह कर वह लौट गई।

रत्ना का शरीर सनसना रहा था और सिर चकरा रहा था। कुछ पल सिर को थामे वह तख्त पर बैठी सोचती रही, यह कैसे हो सकता है। कैसे चली जाऊं ?..... यदि न गई तो ? सिन्हा की बात वह भूल न सकती थी—"यदि तुम न आई तो जो हो जाय, तुम जानो।" रत्ना को कंपकंपी सी आगई। सिन्हा ने कहा है तो कर भी डालेगा।

पांच दिन पहले की प्राण सुखा देने वाली घटना सहसा उसकी स्मृति में तड़प गई। सिन्हा ने ऐसे ही पुर्जा भेजा था—मिलने का अब कोई उपाय नहीं, मैं रह नहीं सकता। आज रात चाहे दो ही मिनिट के लिये हो, तुम्हारे यहां छत पर आऊंगा।

उस दिन भी नौकर उत्तर के लिये ठहरा नहीं था। वह दिन भर तड़पती रही कि उस तक यह जोखिम न उठाने की अपनी प्रार्थना कैसे पहुंचा दे। राजो के व्यवहार के कारण वह स्वयं सिन्हा के यहां जा नहीं सकती थी।

रात में सिन्हा सचमुच ही छत पर पहुंच गया था। मकान के पीछे का नल पकड़

कर वह अंधेरे में चढ़ आया था। यदि कोई देख लेता या हाथ-पांव फिसल जाते ? सभी तरह कितनी बड़ी जोखिम थी। सिन्हा कहता ही था—मेरी जान दांव पर है। तुम्हें छोड़ नहीं सकता।

रत्ना सिन्हा के मन की अवस्था जानती थी--और उसके लिये सब कुछ किये बिना रह सकना सम्भव न था। वह सिन्हा की बात पर मर जाने के लिये तैयार थी तो फिर और क्या था ?·····वास्तव में वह सिन्हा के लिये प्राण दे देने के लिये ही बेचैन थी। मन की इस गहरी विवशता और निश्चय के ऊपर रत्ना का मस्तिष्क कहे जा रहा था, नहीं यह ठीक नहीं। अकेले जाने में उसे भय और झिझक नहीं थी पर अब उचित न था। महीना भर पहले तक वह गुप्ता जी के दफ्तर जाते समय कह देती थी--मैं जरा राजो बहन के हो आऊंगी। कभी किसी दूसरी सहेली का नाम ले देती थी पर जब पति के मन में सन्देह की छाया आ गई, उसने अकेले निकलना छोड़ दिया था। अब अकेली निकल सकती थी तो केवल एक ही बार,···कभी न लौटने के लिये।

रत्ना ने दृढ़ निश्चय कर लिया, वह सदा के लिये जा रही है; जाना उसे होगा। जो होना है हो। उसने साड़ी बदली और फिर रसोई के सामने जाकर बोली—"अरे गोपाल, आटा गूंध रहा है····· अच्छा गूंध ले। रम्मी बहन जी आई हैं। मैं उनके साथ थोड़ी देर के लिये जा रही हूं। किवाड़ मूंद रही हूं। तू सांकल लगा लेना।"

रत्ना तेज परन्तु लड़खड़ाते कदमों से घर के दरवाजे से बाहर हुई, वैसे ही कदमों से सिमटती हुई सी छोटी गली से निकल सामने खड़ी रिक्शा पर बैठ गई।

लोग देखते होंगे, इस खयाल से भी वह रुक न सकी। 'स्टेशन' उसने रिक्शा वाले की आंखों में प्रश्न का जवाब दिया। यह शब्द कहने में उसे प्राणों की पूरी शक्ति लगा देनी पड़ी।

रिक्शा के चलते ही रत्ना के मन में गहरी टीस उठी—दोनों लड़कियां स्कूल से लौट कर 'अम्माजी, अम्माजी' चिल्लाकर दौड़ेंगी और उसे न पाकर उदास हो जायंगी। संध्या समय 'ये' आकर कितने परेशान होंगे ? इन दृश्यों से बचने के लिये उसने आंखें मूंद लीं पर दृश्य तो मन में थे।

रत्ना ने होंठ दबाकर कहा, अब क्या करूं। ये लोग समझ लें मैं मर गई। उसे सिन्हा का, दृढ़ निश्चय से गम्भीर मुख दिखाई दे रहा था। वह जा नहीं रही थी जाना पड़ रहा था; वह रुक नहीं सकती थी। वह चाह रही थी कि न जाये पर स्टेशन पर पहुंच गई।

स्टेशन पर रत्ना के पांव लड़खड़ा रहे थे। वह स्टेशन पर कभी अकेली नहीं गई

थी । उसे जान पड़ रहा था, सभी लोग उसे विस्मय से देख रहे हैं पर अब क्या हो सकता था । स्टेशन पर पहुंचते ही सिन्हा सामने न दिखाई दिया । यह एक और धक्का लगा । अब क्या हो सकता था ? वह तेज धारा में कूद चुकी थी । रुक सकने के लिये कोई किनारा या आधार कहीं नहीं था । याद आया, लिखा था—रेस्तोरां में बैठना । शायद वहां ही हों ।

घबराते हुए उसने प्लेटफार्म टिकट ले लिया । स्टेशन के रेस्तोरां में रत्ना ने एक बार सिन्हा और राजो के साथ चाय पी थी, तब गुप्ता जी भी साथ थे । रविवार का दिन सिन्हा ने निश्चय ही इसलिये तय किया था कि रत्ना और गुप्ता उसे छोड़ने स्टेशन पर जा सकें । डाक गाड़ी एक घन्टे लेट थी ।

रत्ना को याद आया—चाय पीते-पीते हम लोग कितना हंस रहे थे । तब इनके मन में सन्देह नहीं हुआ था । मैंने पूछा—'कलकत्ते से हमारे लिये क्या लायेंगे ? सिन्हा ने उत्तर दिया था—जो लिये जा रहा रहा हूं वही लाऊंगा ।'

राजो और मैं समझ कर मुस्करा दी थीं ।

गुप्ता जी समझ नहीं सके थे इसलिये बोल पड़े थे—"वाह, इतनी दूर जा रहे हो । कब-कब ऐसा अवसर होता है ।"

राजो तब कितनी आड़ बनाये रखती थी । उसे हो क्या गया ?···नहीं तो यह नौबत आती क्यों ?

सिन्हा प्लेटफार्म पर भी दिखाई नहीं दिया । रत्ना सहमते हुए कदमों से रेस्तोरां तक गई । दरवाजा खोल कर झांका—बिलकुल सूना था । यह क्या ? ऐसी जगह अकेली कैसे बैठे ! सामने बड़ी घड़ी पर नजर पड़ी, ग्यारह बजने में सात मिनिट ! ···पुर्जे में ठीक ग्यारह बजे लिखा था । रत्ना को दरवाजे से लौटना पड़ा । क्या करे ?

शन्टिंग करता हुआ एक इंजन बहुत जोर से भक-भक करता लाइन पर से गुजर गया । इच्छा हुई कि उस इंजन के सामने कूद पड़े । इस विचार से भय नहीं लगा पर खयाल आया—सारे शहर में खबर फैल जायगी कितनी बदनामी होगी !

रत्ना घर से आ गई थी तो अब साहस से सोच कर कुछ उपाय करना ही था । सामने ही दिखाई दिया—प्रथम-द्वितीय श्रेणी की महिलाओं के लिये प्रतीक्षालय । वह भीतर चली गई । कुर्सी पर बैठकर दरवाजे की जाली से सिन्हा की प्रतीक्षा में प्लेटफार्म पर आंखें गड़ा दीं ।

रत्ना सोचने लगी—हाय, राजो को क्या हो गया ? उसके लिये जान भी दे दूं तो उसका एहसान उतार नहीं सकती । वैसा दिल किसी का नहीं हो सकता । स्वयं आकर मुझे ले जाती थी । हम दोनों को कमरे में छोड़कर बहाना कर जाती—'भई

विमला के लड़के को बुखार है. जरा उसे देख आऊं। तू मेरे आ जाने तक यहां ही ठहरना। तुझे गाड़ी में पहुंचा आऊंगी।'

रत्ना ने सोचा :—मैं बाले (सिन्हा) को कितना समझाती थी। बाले, इतनी ज्यादती मत करो। माना कि राजो बहन का दिल बड़ा है, वह तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकती है परन्तु फिर औरत का दिल है। बाले नहीं मानें। आखिर वही हुआ। राजो को खयाल हो ही गया कि बाले मुझे उससे अधिक चाहते हैं पर इतना एहसान क्या उसका कम है कि उसने 'इन' से या किसी और से कभी कुछ कहा, नहीं तो मुझे उसी समय जहर खा लेना पड़ता या फांसी लगा लेती।··· ·····

रत्ना ने सोचा :—बाले को हो क्या गया ? आखिर कहां ले जायेंगे ? दो घरों को बरबाद करेंगे ! ·····मैं आ क्यों गई ? अब भी लौट जाऊं ? उसने उठने का यत्न किया पर सिन्हा का चेहरा कल्पना में सामने आ गया। बाले न जाने क्या कर बैठे ? सिन्हा के रात में छत पर चढ़ जाने की घटना याद आ गई। वह उठ न सकी। एक गहरी टीस रत्ना के मन में उठी। सिन्हा के सीने पर सिर रख कर मर जाये···राजो को क्या हो गया ? उसी ने यहां तक बढ़ाया। वह अपने एहसान में मेरी जान भी मांगें तो इनकार नहीं पर अब पीछे भी नहीं हट सकती। उसने बे मोल दिया था, अब वह मोल चाहती है तो मैं मोल में जान देने को तैयार हूं।

रत्ना कल्पना से यथार्थ में लौट आई :—सिन्हा अभी आते ही होंगे। यहीं कहेंगे, हम दोनों कलकत्ते जा रहे हैं, अपना जीवन नये सिरे से आरम्भ करेंगे। चाहे हमें एक कोठरी में या पेड़ के नीचे ही क्यों न दिन काटने पड़ें। हम एक साथ होंगे, मन से और शरीर से। बाले मेरे लिये ही यह सब कर रहे हैं। घर-बार सब कुछ निछावर कर रहे हैं। मेरा क्या है ? मैं मर भी जाऊं तो कोई बात नहीं पर मैं बाले को यों बरबाद न होंने दूंगी।

रत्ना को ख्याल आया :—मैं बाले के लिये सब कुछ कर सकती हूं तो क्या राजो नहीं करेगी ? वह मुझसे बहुत ज्यादा कर सकती है। यदि बाले राज का दिल रख कर चलते तो यह मुसीबत क्यों आती ? बाले ढंग से चलें तो राज अब भी मान जायेगी। मैं यदि मर जाऊं तो बाले राज को छोड़ कर क्यों जायें ? इस दुख में अभिमान सा उसे अनुभव हुआ, जैसे प्यार की जीत के गर्व में मृत्यु भी तुच्छ है। गर्व से उसने कहा :—मैं राज के पांव पकड़कर कहूंगी, बाले तेरे हैं,···तेरे ही रहेंगे। तूने दया कर अपने राज में मुझे भिखारिन की जगह से उठाकर अपने पास बैठा लिया था। मैं क्या तुझे धक्का दे सकती हूं ? मैं फिर दूर हट जाऊंगी। मुझे केवल अपने राजा का दर्शन भर करा दिया कर। ···हाय, पूरे पांच दिन हो गये बाले को !

देखे। यों मैं कैसे जिऊंगी ?.....आ बाले एक बार अपनी झलक दे ! तू ही मेरे प्राणों का और मेरी इज्जत का मालिक है.....।

वेटिंगरूम के दरवाजे की जाली से सिन्हा रेस्तोरां की ओर जाता दिखाई दिया। वह रत्ना के लिये इधर-उधर देख रहा था। एक खुला पत्र और लिफाफा उसके हाथ में थमा था। रत्ना जनाने वेटिंगरूम से निकल आई। सिन्हा के साथ एक कुली सूटकेस और होल्डाल उठाये था।

रत्ना के पांव कांप गये। सचमुच मुझे ले जा रहे हैं। बड़ी कठिनाई से उसने अपने आप को सम्भाला। इसी समय स्टेशन को कंपाते हुए गाड़ी उसे ले जाने के लिए आकर खड़ी हो गई।

सिन्हा रत्ना के समीप आ गया—"जरा रिफ्रैशमेंट रूम में चलो !" आवाज भारी थी। चेहरा भी कुछ गुमसुम।

सूने कमरे में एक मेज की ओर बढ़कर सिन्हा ने एक कुर्सी रत्ना के लिये खींच कर उसे बैठाया और स्वयं भी बैठ गया।

रत्ना धीमे, कातर स्वर में बोल उठी—"बाले, यह क्या कर रहे हो ? मेरा कुछ नहीं पर अपना सोचो। मेरा तो अंत ही समझो....."

रत्ना की बात काट कर सिन्हा कड़वे स्वर में बोला—"जानती हो, क्या किया है उसने ?"

रत्ना प्रश्न भरी आंखों से चुप रह गई।

"यह पढ़कर देखो !" सिन्हा ने अपने हाथ का पत्र रत्ना के सामने रख दिया।

पत्र अच्छे कागज पर स्पष्ट अक्षरों में बहुत सम्भाल कर लिखा जान पड़ता था।

बैरे ने आ कर हुक्म मांगा।

"चाय" सिन्हा ने एक शब्द में उत्तर दे दिया।

रत्ना सनसनाते दिमाग से पत्र पढ़ती जा रही थी :—

"मैं जानती हूं तुम रत्ना को लेकर जा रहे हो। मैंने तुम्हारे संतोष के लिये उसे तुम्हारे पास पहुंचा दिया था लेकिन उसके बाद तुमने मेरी भावना की परवाह न की। तुम्हारा विचार है कि तुम उसके बिना नहीं रह सकते। इस विषय में अब कोई बात व्यर्थ है। सम्भव है तुम महीने या छः महीने बाद लौटकर आओ। उस समय तुम्हें मेरे और लाल के सम्बन्ध में कोई एतराज करने का हक नहीं होगा। छः वर्ष पहले तुमने मुझे प्रतिज्ञा करने के लिये मजबूर किया था कि मैं उसके सम्बन्ध में सोचूंगी भी नहीं। अब तुम खूब समझ सकते हो, यह बात कितनी अस्वाभाविक थी। तुम रत्ना को लेकर जा रहे हो, मतलब साफ है कि तुम्हें मेरी बात मंजूर है। इसके

बदले विश्वास दिलाती हूं कि तुम्हें रत्ना को लेकर जाने की जरूरत नहीं। इससे उसका जीवन और परिवार नष्ट हो जायगा। गुप्ता क्रोध में जाने क्या कर बैठे ? मैं उसकी और तुम्हारी सहायता जैसे पहले करती थी, वैसे ही करने के लिये तैयार हूं, बल्कि उससे भी ज्यादा। मैं पर्दा बन कर रहूंगी तो गुप्ता की मजाल नहीं कुछ बोल सके।

यदि तुमने लौटने पर मेरी किसी बात पर एतराज किया तो मैं एक घंटे के भीतर समाप्त हो जाऊंगी। इसमें कोई रुकावट नहीं डाल सकेगा। इससे भी मुझे दुख न होगा। इतना तो संतोष होगा कि महीने या छः महीने में असली जीवन पा लिया।

तुम्हारी भी
राज

पत्र पढ़ते हुए रत्ना को अनुभव हो रहा था कि तेज धार में बहती-बहती वह भंवर में फंस गयी है। पत्र समाप्त होते-होते उसे जान पड़ा कि भंवर ने उसे खूब झिझोड़ कर किनारे की ओर फेंक दिया है। आशा का सहारा पाकर रत्ना ने पूछा—"यह कब ?"

"वह मुझे गाड़ी में स्टेशन पर छोड़ने आई थी। मेरे गाड़ी से उतरने पर उसने यह लिफाफा देकर कहा—"इसे अभी पढ़ लो। इधर-उधर न गिर जाय।"

"लाल कौन है ?" सहारा पा लेने के विश्वास में रत्ना ने धीमे से पूछा।

"है एक गुण्डा। तुम नहीं जानती उसे पर इस औरत का कमीनापन देखा !" सिन्हा की आंखें लाल हो गई, "मुझे डरा करा सौदा करना चाहती है। छः महीने का असली जीवन पाकर नहीं, उसे यों ही मरना होगा। न छः महीने भर का असली जीवन मिलेगा, न घण्टे भर में मौत। यों ही तड़पेगी। मैं देखूंगा कैसे तड़पती है।"

"बाले ?" रत्ना ने सिन्हा की ओर झुककर ओठों से पुकारा, "यह क्या कह रहे हो ? बनती बात क्यों बिगाड़ रहे हो। मेरे लिये ....." रत्ना ने अपनी आंखें सिन्हा की आंखों में टिकाकर भीख मांगी। यदि वे रेस्तोरां में न होते तो वह उसके दोनों हाथ पकड़ उसके ओठों पर अपने ओंठ रख देती।

"यह क्या कह रही हो तुम ? अपनी औरत की इज्जत का सौदा करूं ?"

रत्ना को जान पड़ा कि लोहे का भारी डंडा उसके सिर पर जोर से आ गिरा। वह सन्न रह गई। आंखें मुंद गईं और गर्दन झुक गई। उसने दांतों से अपने पतले होंठ काट लिये। हाथों की मुट्ठियां कसी और उठ खड़ी हुई। सिन्हा की ओर देखे बिना वह दरवाजे की ओर चल दी।

बेरा चाय लेकर अभी तक आया नहीं था।

"रत्ना" सिन्हा ने पुकारा पर रत्ना ने सुना नहीं।

सिन्हा ने बांह बड़ा कर रोकना चाहा—"सुनो!"

"खबरदार मुझे छुआ!" रत्ना की आवाज धीमी थी पर बहुत कड़ी और आंखें पत्थर की तरह स्थिर।

रत्ना तेजी से स्टेशन से निकली और एक रिक्शा पर बैठ गई। 'मोती पार्क' उसने कहा। मस्तिष्क में उसके बार-बार गूंज रहा था—'अपनी औरत' और वह दांत पीस रही थी।

गली के सामने रिक्शा से उतरते ही याद आया, अपने घर का दरवाजा तो वह सदा के लिये छोड़ गई थी। वह दरवाजा उसके लिये खुलेगा? लड़कियां और 'ये' क्या कहेंगे? उसकी केवल एक इच्छा थी: गुप्ता से कहे कि मुझे अपने पांव से कुचल कर मार डालो!

रत्ना ने घर के किवाड़ों पर कांपता हुआ हाथ रखा। किवाड़ खुले थे। क्या सब लोग आ गये? उसका दिल डूब सा गया। भीतर आकर सामने कानस पर रखी घड़ी पर आंख पड़ी—ग्यारह बजकर सत्रह।

सोचा—नौकर सांकल लगाना भूल गया था। वह तख्त पर गिर सी पड़ी।

रत्ना केवल तीस मिनिट घर से बाहर थी।

अखबार में नाम

जून का महीना था, दोपहर का समय और धूप कड़ी थी। ड्रिल-मास्टर साहब ड्रिल करा रहे थे।

मास्टर साहब ने लड़कों को एक लाइन खड़े में होकर डबलमार्च करने का आर्डर दिया। लड़कों की लाइन ने मैदान का एक चक्कर पूरा कर दूसरा आरंभ किया था कि अनन्तराम गिर पड़ा।

मास्टर साहब ने पुकारा—"हाल्ट !"

लड़के लाइन से बिखर गये।

मास्टर साहब और दो लड़कों ने मिलकर अनन्त को उठाया और बरामदे में ले गये। मास्टर साहब ने एक लड़के को दौड़कर पानी लाने का हुक्म दिया। दो-तीन लड़के स्कूल की कापियां लेकर अनन्त को हवा करने लगे। अनन्त के मुंह पर पानी के छींटे मारे गये। उसे होश आते-आते हेडमास्टर साहब भी आ गये और अनन्तराम के सिर पर हाथ फेर कर, पुचकार कर उन्होंने उसे तसल्ली दी।

स्कूल का चपरासी एक टांगा ले आया। दो लड़कों के साथ ड्रिल मास्टर अनन्तराम को उसके घर पहुंचाने गये। स्कूल भर में अनन्तराम के बेहोश हो जाने की खबर फैल गई। स्कूल में सब उसे जान गये।

लड़कों के धूप में दौड़ते समय गुरदास लाइन में अनन्तराम से दो लड़कों के बाद था। यह घटना और कांड हो जाने के बाद वह सोचता रहा, अगर अनन्तराम की जगह वही बेहोश होकर गिर पड़ता, वैसे ही उसे चोट आ जाती तो कितना अच्छा होता ? आह भर कर उसने सोचा, सब लोग उसे जान जाते और उसकी खातिर होती।

श्रेणी में भी गुरदास की कुछ ऐसी ही हालत थी। गणित के मास्टर साहब

सवाल लिखाकर बेंचों के बीच में घूमते हुए नजर डालते रहते थे कि कोई लड़का नकल या कोई दूसरी बेजा हरकत तो नहीं कर रहा। लड़कों के मन में यह होड़ चल रही होती कि सबसे पहले सवाल पूरा करके कौन खड़ा हो जाता है।

गुरदास बड़े यत्न से अपना मस्तिष्क कापी में गढ़ा देता। उंगलियों पर गुणा और योग करके उत्तर तक पहुंच ही रहा होता कि बनवारी सवाल पूरा करके खड़ा हो जाता। गुरदास का उत्साह भंग हो जाता और दो-तीन पल की देर यों भी हो जाती। कभी-कभी सबसे पहले सवाल कर सकने की उझलन के कारण कहीं भूल भी हो जाती। मास्टर साहब शाबाश देते तो बनवारी और खन्ना को और डांटते तो खलीक और महेश का ही नाम लेकर। महेश और खन्ना न केवल कभी सवाल पूरा करने की चिन्ता न करते बल्कि उसके लिये लज्जित भी न होते। नाम जब कभी लिया जाता तो बनवारी, खन्ना खलीक और महेश का ही; गुरदास बेचारे का कभी नहीं। ऐसी ही हालत व्याकरण और अंग्रेजी की क्लास में भी होती। कुछ लड़के पढ़ाई-लिखाई में बहुत तेज होने की प्रशंसा पाते और कोई डांट-डपट के प्रति निर्द्वन्द्व होने के कारण बेंच पर खड़े कर दिये जाने से लोगों की नजर में चढ़कर नाम कमा लेते। गुरदास बेचारा दोनों तरफ से बीच में रह जाता।

इतिहास में गुरदास की विशेष रुचि थी। शेरशाह सूरी और खिलजी की चढ़ाइयों और अकबर के शासन के वर्णन उसके मस्तिष्क में सचित्र होकर चक्कर काटते रहते, वैसे ही शिवाजी के अनेक किले जीतने के वर्णन भी। वह अपनी कल्पना में अपने आपको शिवाजी की तरह ऊंची, नोकदार पगड़ी पहने, छोटी दाढ़ी रखे और वैसा ही चोगा पहने, तलवार लिये सेना के आगे घोड़े पर सरपट दौड़ता चला जाता देखता।

इतिहास को यों मनस्थ कर लेने या इतिहास में स्वयं समा जाने पर भी गुरदास को इन महत्वपूर्ण घटनाओं की तारीखें और सन याद न रहते थे क्यों कि गुरदास के काल्पनिक ऐतिहासिक चित्रों में तारीखों और सनों का कोई स्थान न था। परिणाम यह होता कि इतिहास की क्लास में भी गुरदास को शाबाश मिलने या उसका नाम पुकारा जाने का समय न आता। सबके सामने अपना नाम पुकारा जाता सुनने को गुरदास की महत्वाकांक्षा उसके छोटे से हृदय में इतिहास के अतीत के बोझ के नीचे दबकर सिसकती रह जाती। तिस पर इतिहास के मास्टर साहब का प्रायः कहते रहना कि दुनिया में लाखों लोग मरते जाते हैं परन्तु जीवन वास्तव में उन्हीं लोगों का होता है जो मर कर भी अपना नाम जिन्दा छोड़ जाते हैं···। गुरदास के सिसकते हृदय को एक और चोट पहुंचा देता।

गुरदास अपने माता-पिता की संतानों में तीन बहनों का अकेला भाई था। उसकी

मां उसे राजा बेटा कह कर पुकारती ही थी। पिता स्वयं रेलवे के दफ्तर में साधारण क्लर्की करते थे। कभी कह देते कि उनका पुत्र ही उनका और अपना नाम कर जायगा।

ख्याति और नाम की कमाई के लिये इस प्रकार निरंतर दी जाती रहने वाली उत्तेजनाओं के बावजूद गुरदास श्रेणी और समाज में अपने आप को किसी अनाज की बोरी के करोड़ों एक ही से दानों में से एक साधारण दाने से अधिक अनुभव न कर पाता था। ऐसा दाना कि बोरी को उठाते समय गिर जाये तो कोई ध्यान नहीं देता। ऐसा समय उसकी नित्य कुचली जाती महत्वाकांक्षा चीख उठी कि बोरी के छेद से सड़क पर उसके गिर जाने की घटना ही ऐसी क्यों न हो जाय कि दुनिया जान ले कि वह वास्तव में कितना बड़ा आदमी है और उसका नाम मोटे अक्षरों में अखबारों में छप जाये। गुरदास कल्पना करने लगता कि वह मर गया है परन्तु अखबारों में मोटे अक्षरों में छपे अपने नाम को देखकर, मृत्यु के प्रति विद्रूप से मुस्करा रहा है ; मृत्यु उसे समाप्त न कर सकी।

आयु बढ़ने के साथ-साथ गुरदास की नाम कमाने की महत्वाकांक्षा उग्र होती जा रही थी, परन्तु उस स्वप्न की पूर्ति की आशा उतनी ही दूर भागती जान पड़ रही थी। बहुत बड़ी-बड़ी कल्पनाओं के बावजूद वह अपने पिता पर कृपा दृष्टि रखने वाले एक बड़े साहब की कृपा से दफ्तर में केवल क्लर्क ही बन पाया।

जिन दिनों गुरदास अपने मन को समझा कर यह संतोष दे रहा था कि उसके मुहल्ले के हज़ार से अधिक लोगों में से किसी का भी तो नाम कभी अखबार में नहीं छपा, तभी उसके मुहल्ले के एक निस्संतान लाला ने अपनी आयु भर का संचित गुप्तधन प्रकट करके अपने नाम से एक स्कूल स्थापित करने की घोषणा कर दी।

लाला जी का अखबार में केवल नाम ही प्रशंसा-सहित नहीं छपा, उनका चित्र भी छपा। गुरदास आह भर कर रह गया। साथ ही अखबार में नाम छपवाकर, नाम कमाने की आशा की बुझती हुई चिनगारियों पर राख की एक और तह पड़ गई। गुरदास ने मन को समझाया कि इतना धन और यश तो केवल पूर्व जन्म के कर्मों के फल से ही पाया जा सकता है। इस जन्म में तो ऐसे अवसर और साधन की कोई आशा उस जैसों के लिये हो नहीं सकती थी।

उस साल बन्सत के आरम्भ में शहर में प्लेग फूट निकला था। दुर्भाग्य से गुरदास के गरीब मुहल्ले में गलियां कच्ची और तंग होने के कारण, बीमारी का पहला शिकार, उसी मुहल्ले में दुलारे नाम का व्यक्ति हुआ।

मुहल्ले की गली के मुहाने पर रहमान साहब का मकान था। रहमान साहब ने आत्म-रक्षा और मुहल्ले की रक्षा के विचार से छूत की बीमारी के हस्पताल को फोन

करके एम्बुलेंस गाड़ी मंगवा दी। बहुत लोग इकट्ठे हो गये। दुलारे को स्ट्रेचर पर उठाकर मोटर में रखा गया और हस्पताल पहुंचा दिया गया। म्युनिसिपैलिटी ने उसके घर की बहुत जोर से सफाई की। मुहल्ले के हर घर में दुलारे की चर्चा होती रही।

गुरदास संध्या समय थका-मांदा और झुंझलाया हुआ दफ्तर से लौट रहा था। भीड़ में से अखबार वाले ने पुकारा—"आज शाम का ताजा अखबार। नाहर मुहल्ले में प्लेग फूट निकला। आज की खबरें पढ़िये।"

अख़बार में अपने मुहल्ले का नाम छपने की बात से गुरदास सिहर उठा। उसके मस्तिष्क में चमक गया·····ओह, दुलारे की खबर छपी होगी। अख़बार प्रायः वह नहीं खरीदता था परन्तु अपने मुहल्ले की खबर छपी होने के कारण उसने चार पैसे खर्च कर अखबार ले लिया। सचमुच दुलारे की खबर पहले पृष्ठ पर ही थी। लिखा था—'बीमारी की रोक-थाम के लिये सावधान।' और फिर दुलारे का नाम और उसकी खबर ही नहीं, स्ट्रेचर पर लेटे हुए, घबराहट में मुंह खोले हुए दुलारे की तसवीर भी थी।

गुरदास ने पढ़ा कि बीमारी का इलाज देर से आरम्भ होने के कारण दुलारे की अवस्था चिंताजनक है। पढ़ कर दुख हुआ। फिर ख्याल आया···इस आदमी का नाम अख़बार में छप जाने की क्या आशा थी ? पर छप ही गया। अपना-अपना भाग्य है, एक गहरी सांस लेकर गुरदास ने सोचा। दुलारे की अवस्था चिंताजनक होने की बात से दुख भी हुआ। फिर ख्याल आया·····देखो, मरते-मरते नाम कर ही गया। मरते तो सभी हैं पर यह बीमारी की मौत फिर भी अच्छी ! ख्याल आया, कहीं बीमारी मुझे भी न हो जाये। भय तो लगा पर यह भी ख्याल आया कि नाम तो जिसका छपना था, छप गया। अब सबका नाम थोड़े ही छप सकता है। खैर, दुलारे अगर बच न पाया तो अखबार में नाम छप जाने का फायदा उसे क्या हुआ ? मज़ा तो तब है कि बेचारा बच जाय और अपनी तसबीर वाले अख़बार को अपनी कोठरी में लटका ले····· !

× × ×

गुरदास को होश आया तो उसने सुना—"इधर से सम्भाल! ! उधर से उठाओ !" कूल्हे में बहुत जोर से दरद हो रहा था। वह स्वयं उठ न पा रहा था। लोग उसे उठा रहे थे।

"हाय ! हाय मां !" उसकी चीखें निकली जा रही थीं। लोगों ने उठा कर उसे एक मोटर में डाल दिया।

हस्पताल पहुंच कर उसे समझ में आया कि वह बाजार में एक मोटर के धक्के से गिर पड़ा था। मोटर के मालिक एक शरीफ वकील साहब थे। उस घटना के लिए बहुत दुख प्रकट कर रहे थे। एक बच्चे को बचाने के प्रयत्न में मोटर को दाईं तरफ जल्दी से मोड़ना पड़ा। उन्होंने बहुत जोर से हार्न भी बजाया और ब्रेक भी लगाया पर ये आदमी चलता-चलता अखबार पढ़ने में इतना मगन था कि उसने सुना ही नहीं।

गुरदास कूल्हे और घुटने की दरद के मारे कराह रहा था। कुछ सोचना समझना उसके बस की बात ही न थी।

डाक्टर ने गुरदास को नींद आने की दवाई दे दी। वह भयंकर दरद से बच कर सो गया। रात में जब नींद टूटी तो दरद फिर होने लगा और साथ ही ख्याल भी आया कि अब शायद अखबार में उसका नाम छप ही जाये। दरद में भी एक उत्साह सा अनुभव हुआ और दरद भी कम मालूम होने लगा। कल्पना में गुरदास को अखबार के पन्ने पर अपना नाम छपा दिखाई देने लगा।

सुबह जब हस्पताल की नर्स गुरदास के हाथ-मुंह धुला कर उसका बिस्तर ठीक कर रही थी, मोटर के मालिक वकील साहब उसका हाल-चाल पूछने आ गये।

वकील साहब एक स्टूल खींच कर गुरदास के लोहे के पलंग के पास बैठ गये और समझाने लगे—"देखो भाई, ड्राइवर बेचारे की कोई गलती नहीं थी। उसने तो इतने जोर से ब्रेक लगाया कि मोटर को भी नुकसान पहुंच गया। उस बेचारे को सजा हो भी जायगी तो तुम्हारा भला हो जायगा। तुम्हारी चोट के लिये बहुत अफसोस है। हम तुम्हारे लिये दो-चार सौ रुपये का भी प्रबन्ध कर देंगे। कचहरी में तो मामला पेश होगा ही, जैसे हम कहें, तुम बयान दे देना; समझे···!"

गुरदास वकील साहब की बात सुन रहा था पर ध्यान उसका वकील साहब के हाथ में गोल-मोल लिपटे अखबार की ओर ही था। रह न सका तो पूछ बैठा—"वकील साहब, अखबार में हमारा नाम छपा है? हमारा नाम गुरदास है। मकान नाहर मुहल्ले में है।"

वकील साहब की सहानुभूति में झुकी आंखें सहसा पूरी खुल गईं—"अखबार में नाम?" उन्होंने पूछा, "चाहते हो? छपवा दें!"

"हां साहब, अखबार में तो जरूर छपना चाहिये।" आग्रह और विनय से गुरदास बोला।

"अच्छा, एक कागज पर नाम-पता लिख दो।" वकील साहब ने कलम और एक कागज गुरदास की ओर बढ़ाते हुये कहा, "अभी नही छपा तो कचहरी में मामला

पेश होने के दिन छप जायगा, ऐसी क्या बात है।"

गुरदास को लंगड़ाते हुए ही कचहरी जाना पड़ा। वकील साहब की टेढ़ी जिरह का उत्तर देना सहल न था आरम्भ में ही उन्होंने पूछा—"तुम अखबार में नाम छपवाना चाहते थे ?"

"जी हां।" गुरदास को स्वीकार करना पड़ा।

"तुम्हें उम्मेद थी कि मोटर के नीचे दब जाने वाले आदमी का नाम अखबार में छप जायगा ?" वकील साहब ने फिर प्रश्न किया।

"जी हाँ !" गुरदास कुछ झिझका पर उसने स्वीकार कर लिया।

× × ×

अगले दिन अखबार में छपा :—

"मोटर दुर्घटना में आहत गुरदास को अदालत ने हर्जाना दिलाने से इनकार कर दिया। आहत के बयान से साबित हुआ कि अखबार में नाम छपाने के लिये ही वह जान-बूझ कर मोटर के सामने आ गया था···"

गुरदास ने अखबार से अपना मुंह ढांप लिया, किसी को अपना मुंह कैसे दिखाता·····।

—:o:—

असली चित्र

हमारे ड्राइंग रूम में रेडियो सेट के ऊपर जो चित्र रक्खा है उसके बारे में कितनी ही बार कितने ही प्रश्न पूछे गये हैं--वह चित्र किसका है, किसने बनाया है, कापी है या 'माडल' से बनाया गया गया है ? इस चित्र का प्रसंग आने पर कुछ कहते नहीं बनता। लिख डालना शायद उतना कठिन न होगा।

× × ×

फौजी आदमियों के सम्बन्ध में साधारणतः मेरी भी वही धारणा है जो दूसरे भले आदमियों की होती है--जहां तक सम्भव हो, मुंह न लगाना। यह भी ठीक है कि सभी नियमों और धारणाओं में कभी न कभी अपवाद का अवसर आ ही जाता है। तिस पर कैप्टन लुम्बा श्रीमतीजी का भाई है। इस रिश्ते से सौजन्यता का कर्त्तव्य निबाहते-निबाहते एक सद्भावना उसके प्रति, वास्तव में उसके व्यवहार के कारण ही बन गयी थी। सद्भावना भी ऐसी कि दूसरे लोगों के वैसे व्यवहार से नाराज हो जाने का काफी कारण जान पड़े। लुम्बा से नाराज न होने के लिये बहाना मिल जाता था। कुछ तो उसका रूप-रंग ही ऐसा है; साधारण से ऊंचा सिर निकलता कद, चौड़ा सीना, पतली कमर, खूब साफ गेहुएं चेहरे पर घनी-घनी काली भवों के नीचे बड़ी-बड़ी आंखें, जरा पुष्ठ होठों पर दबी हुई-सी मुस्कराहट। सेना में जाने वह कैसे अफसराना ढंग निबाहता होगा ? घर में तो वह बिलकुल घरेलू आदमी ही बना रहता है।

लुम्बा अपनी रेजीमेन्ट का बहुत अच्छा खिलाड़ी (ऐथेलीट) भी है। रेजीमेन्ट के सम्मान के लिये अच्छे खिलाड़ियों को प्रोत्साहन देना आवश्यक होता है। इस बहाने लुम्बा वर्ष में एक महीने की छुट्टी और सैर भी रेजीमेन्ट के खर्च पर कर लेता है।

वह लखनऊ छावनी में क्रिकेट का सैनिक टूर्नामेन्ट खेलने आया था। बहिन के अनुरोध से अफसरों के मैस में न रह कर हमारे यहां ही रहा। कप्तान बनने से पहले भी वह कितनी बार यहां ठहर चुका था। कप्तान बन जाने के बाद भी उसके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया।

स्टेशन से आते ही, नौकर अभी उसका सामान गाड़ी से उतार ही रहा था, वह टेलीफोन की ओर बढ़ गया। मैच से पहले टेस्ट और दूसरी बातों के लिये उसे किस समय छावनी जाना चाहिये, यही पूछ लेना चाहता था।

मिलिटरी-एक्सचेंज मांग कर उसने कहा—"मैं कैप्टन लुम्बा बोल रहा हूं। रांची से अभी आया हूं। मेजर हुण्डू से बात करना चाहता हूं।"

टेलीफोन पर जो उत्तर मिला उसका प्रभाव लुम्बा के चेहरे और स्वर में तत्क्षण दिखाई दिया—"यह तो आपकी बहुत मेहरबानी है।" उसने कहा और सुनने के लिये जरा रुके।

"जी

थिरी सेवन फाइव टू।

जी,

हां;

जी, जब मेजर हुण्डू ट्रंककाल खत्म कर चुकें, आप उनसे बात करा दीजियेगा। बहुत-बहुत धन्यवाद।"

फोन का रिसीवर रखते हुये लुम्बा ने मुस्कराकर कहा—"मिलिटरी-एक्सचेंज पर यह कोई बहुत भली लड़की है, वेरी ओबलाईजिंग। वेरी ब्यूटीफुल वायस; ब्युटीफुल एण्ड ड्युटीफुल।"

मुस्कराते हुये खट्ट-खट्ट लम्बे-लम्बे कदमों से कमरे से निकल, एक बार में दो-दो सीढ़ियां लांघता वह जीने से ऊपर जा पहुंचा। ऊपर से उसकी पुकार सुनायी दी—"बहिन जी, कहां छिपी हुई हैं आप ?"

हमारे पड़ोसी रामधनजी फोन करने के लिये आये थे और लम्बी बात करने लगे। उनकी आत्मीयता दिखाने की आदत है। अखबार पढ़ना भी असम्भव हो गया। उस समय ऊपर से लुम्बा और नन्दी, मामा-भानजी में झगड़ा आरम्भ हो जाने की आवाजें आने लगी थीं।

नन्दी का छोटा भाई मक्कू चिल्लाकर शिकायत कर रहा था—"मामाजी, हमारे लिये बन्दूक लाये ? आपने कहा था, अबकी आयेंगे तो बन्दूक लायेंगे।"

सोचा, रामधनजी को बात करते-करते बाहर छोड़ आऊँ तभी मुक्ति मिल सकेगी।

दरवाजे से बाहर निकल ही रहा था कि टेलीफोन की घण्टी फिर बज उठी। श्रीमतीजी ऊपर से आ गईं थीं इसलिये टेलीफोन सुन लेने का संकेत कर बाहर चला गया।

बाहर भी रामधनजी ने चार-पांच मिनिट लगा ही दिये। जब लौटा तो श्रीमती जी हंसी से लोट-पोट होती हुई लुम्बा से कह रही थीं—"भई यह तेरी दोस्त मिस नाथ भी खूब हैं।"

सामने खड़े लुम्बा ने पेटी में दोनों हाथों के अंगूठे फंसाते हुए प्रश्न किया—"मिस नाथ ? मिस नाथ कौन ?"

"यह मिलिटरी एक्सचेंज," वे हंसती हुई सुनाने लगीं, "मैंने टेलीफोन उठाया तो सुना--आपके यहां से कुछ देर पहले कैप्टन लुम्बा ने फोन किया था। अंग्रेजी में तो कहते ही हैं—डू यू वांट कैप्टन लुम्बा ? मैंने हिन्दी में पूछ लिया आप कैप्टन लुम्बा को चाहती हैं ?

"चुड़ैल ने जवाब दिया—हाय राम बहनजी, आप कैसी बातें करती हैं ! आपका चांद जैसा भाई आपको मुबारिक। अभी तो मुलाकात भी नहीं हुई। चाहने की कौन बात ! वे तो आज सुबह ही आये हैं।...आंख भर न देखा था, होने लगी रुसवाई। कैप्टेन लुम्बा मेजर हुण्डू से बात करना चाहते थे। अब मेजर का नम्बर खाली है।" श्रीमती जी कहती गयीं, "मुझे उसकी बातें अच्छी लगीं। आवाज कितनी मीठी है ! मैंने पूछा—आपका नाम क्या है ? तो कहती है कि क्या इतनी नाराज़ हो गयीं कि नाम लेकर डांटेंगी भी। मैंने कहा—नहीं, आपकी बातें और आवाज अच्छी लगी। मैं अपना नाम पहले बता देती हूं, मैं कैप्टेन लुम्बा की बहिन हूं। उसने बताया कि मुझे मिस नाथ कहते हैं।

"मैंने पूछा आप क्या मद्रास की रहने वाली हैं ? मुझे नाम कुछ मद्रासी सा लगा। पंजाबी में बोलने लगी कि क्या मैं इतनी खराब हिन्दी बोलती हूं जी ! मैंने उससे मिलने आने के लिए कहा है। भई, बड़ी शरीर है तुम्हारी मिस नाथ, पर आवाज मीठी है। उसे मिलने के लिए एक दिन जरूर बुलाना।"

लुम्बा ने मुस्कराते हुए फोन उठाकर मिलिटरी-एक्सचेंज मांगा और पूछा--"मिस नाथ हैं ?"

"जी मैं लुम्बा हूं।"

.....

"मेजर हुण्डू से फिर बात हो जायगी। पहले बताइये कि आपने बहिन जी पर एकदम क्या जादू कर दिया है ?"

.....

लुम्बा ने जोर से हंसकर कहा—"कह रही हैं, मिस नाथ को जरूर बुलाओ। मिलना चाहती हैं।"

.....

"मैं तो कई दिन रहूंगा।"

.....

"जी, टूर्नामेंट खेलने आया हूं।"

.....

"आज शाम ? कितने बजे !"

.....

"छः बजे ? दैट्स गुड।"

.....

"यही स्टेशन रोड पर वी० बटा सात।"

.....

"दैट्स गुड। हां, अब मेजर हुण्डू से नम्बर मिला दीजिये।"

मेजर हुन्डू से बात समाप्त कर लुम्बा ने कहा—"मिस नाथ कह रही थी कि आप सब लोग बड़े शक्की हैं। एक दूसरे पर बहुत चौकसी रखते हैं। बहिन कहती हैं कि मेरे भाई से क्यों बात करती हो और भाई कहता कि बहिन पर जादू कर दिया। आज शाम छः बजे के बाद आयेगी। मैंने जगह बता दी है···बहुत तेज मज़ाक करती है।·····आवाज कितनी साफ़ है ?"

सन्ध्या जब मैं दफ्तर से लौटा तो श्रीमतीजी और लुम्बा चाय बनवा कर मिस नाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों से जैसी बातें सुनी थीं, स्वयं मुझे भी कौतूहल था कि मिस नाथ से मिला जाये। छः क्या सात भी बज गये पर वह आई नहीं।

लुम्बा ने कहा—"समय देकर न आना भी बहुत बुरी बात है।"

श्रीमतीजी ने सफाई दी—"क्या पता, कोई मजबूरी हो गयी हो, नहीं आ सकी"

प्रतीक्षा छोड़ हम लोगों ने चाय पी डाली।

चाय के बाद नन्दी और मक्कू के बार-बार कहने पर भी लुम्बा उन्हें आइसक्रीम खिलाने हजरतगंज नहीं ले गया। वह एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगा। यह बात कुछ असाधारण थी। किसी पुस्तक, कहानी या लेख की कितनी भी प्रशंसा क्यों न की जाय, लुम्बा को पढ़ने के लिये विवश नहीं किया जा सकता। पत्रिकाओं को वह चित्र देखने भर के लिये उठाता है। चित्रों को काफी देर तक देख कर उन पर अपना मत प्रकट कर पत्रिका को पटक देता है।

पढ़ने में रुचि न होने का अर्थ नहीं कि लुम्बा ठेठ मिलिटरी जवान है। तीन बरस तक मिलिटरी में अफसर रह चुकने के बाद भी वह रम नहीं पीता। उसे चाय और काफी भी अच्छी नहीं लगती। अभी तक बच्चों की तरह लैमनड्राप खाता है। गप्प-बाजी में उसे कोई उत्साह नहीं। कोई काम न रहने पर रेडियो को खोलकर उसमें आ गई कोई खराबी सुधारता रहेगा या चाबीदार खिलौनों की मरम्मत कर देगा या कोई नयी चीज नन्दी और मक्कू के लिये बनाने लगेगा। नन्दी और मक्कू से वह कैरम खेलकर भी समय बिता सकता है। पतंग भी उड़ा सकता है या बच्चों से कुश्ती लड़ता रहेगा। हां, चित्र बनाने का उसे शौक है, हर बार वह नया कलर बाक्स लाता है। फर्श के कालीन पर पट लेट कर वह चित्र बनाता रहेगा। बच्चे भी पास बैठे देखते रहेंगे। अपने बनाये चित्र वह उन्हें ही दे जाता है।

दूसरे दिन छावनी जाने से पहले लुम्बा ने मिलिटरी-एक्सचेंज में मिस नाथ को फोन किया—वादे पर न आने की बात पर विस्मय और शिकायत प्रकट की। हम लोगों को बताया कि छुट्टी के बाद मिस नाथ को दूसरी लड़की की जगह ड्यूटी देनी पड़ गयी थी इसलिये वह न आ सकी। उसे अभी दो-तीन रोज ओवरटाइम देना पड़ेगा। उसके बाद आयेगी।

कुछ दिन बाद लुम्बा ने मिस नाथ को फोन करके चाय पर आने का वादा याद दिलाया।

मिस नाथ ने उत्तर दिया कि उसकी ड्यूटी छः बजे समाप्त होती है। तब चाय का समय नहीं होता।

लुम्बा ने कहा कि वह सिनेमा का समय होता है। उसने मिस नाथ को सिनेमा साथ देखने का निमन्त्रण दिया और आश्वसन पाया कि वह छः बज कर पचीस मिनट पर 'मेफेयर' में आ जायगी।

सिनेमा साढ़े छः पर आरम्भ होकर लगभग साढ़े आठ बजे समाप्त होता है। लुम्बा आठ ही बजे लौट आया तो श्रीमती जी ने पूछा—"अरे सिनेमा नहीं गये ?"

लुम्बा ने नकार की मुद्रा में हाथ हिला दिया।

"क्यों ? और वह मिस नाथ कहां है ?·····नहीं आयीं ?"

फिर नकार की मुद्रा में हाथ हिलाकर लुम्बा ने उत्तर दिया—"उसने छः बजकर पचीस पर आने को कहा था। मैं छः पैंतालीस तक देखता रहा। पन्द्रह मिनिट तक फिल्म का पहला भाग निकल चुका था। सोचा, अब क्या जाऊं। ऐसे ही घूमता हुआ लौट आया।"

लुम्बा उस दिन फिर आराम कुर्सी पर पसर कर पांव हिलाते हुये गुनगुनाते-गुन-

गुनाते बिना चित्रों की पत्रिका पन्ने पलटता रहा ।

अगले दिन छावनी की ओर चलने से पहले ही लुम्बा ने फिर मिस नाथ को फोन किया । उसके स्वर में उलाहना और झुंझलाहट थी ।

"तो फिर वादा क्यों किया था ?"

.....

"आप सहेली को भी साथ ले आतीं ।"

.....

"क्या एतवार ?"

.....

"दो वार तो वादा टूट चुका ।"

....

"परसों ?·· अच्छा, अगर देर भी हो जायगी तो मैं इन्तजार करूंगा ।"

उस संध्या वह छावनी से कुछ देर से लौटा था । झटपट कपड़े बदल कर 'मेफेयर' चला गया । वह सिनेमा समाप्त बाद लौटा । हम लोग भोजन के लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

भोजन के समय श्रीमती जी ने पूछा—"तो भई आज मुलाकात हो गयी न ? "कैसी लगी ?"

लुम्बा ने खाते हुए इनकार में हाथ हिला दिया ।

"क्या ?" श्रीमती जी ने विस्मय प्रकट किया ।

"आज भी नहीं आयी । हमने कहा, जाये जहन्नुम में । हम तो सिनेमा देखें ।" लुम्बा ने उत्तर दिया ।

"वह भी क्या तमाशा है !" श्रीमती जी विस्मय प्रकट किया, "तो वादा क्यों करती है ? नहीं आना चाहती तो कह देती ।"

थाली पर झुके लुम्बा ने इनकार में हाथ हिला दिया ।

"अच्छा मैं बात करूंगी उस चुड़ैल से कल । बात तो वह ऐसे करती है अपनेपन से कि बस पूछो नहीं ।"

अगले दिन श्रीमती जी ने मिस नाथ से जवाब तलब किया--"यह आखिर बात क्या है ? वायदे करना और आना नहीं ।"

"बहिन जी, कुछ ऐसी ही बात हो जाती है कि आ नहीं पाती । आपके भाई साहब तो बहुत नाराज हैं न !" मिस नाथ ने बहुत ही आत्मीयता और विनय से बात की जैसे अपनी विवशता के लिये क्षमा सी मांग रही हो ।

श्रीमती जी ने उत्तर दिया--"भाई नाराजगी की बात तो जरूर है, पर वह नाराज नहीं है। वह नाराज होना तो जानता ही नहीं।"

"नहीं जी।" मिस नाथ ने अपनी गलती स्वीकार की, "मुझ से जरूर नाराज हैं। मेरा काम ही ऐसा था।"

"नहीं-नहीं! लो, वह खुद ही बात करेगा।" लुम्बा पास ही खड़ा था। श्रीमती जी ने फोन लुम्बा के हाथ में दे दिया।

फोन कर चुकने के बाद लुम्बा ने हंसते हुये बात सुनायी—"कहती है, तुम नाराज क्यों नहीं हो? नाराज नहीं हो तो फिर आने का फायदा क्या? न आने से नाराज नहीं हो तो आने से नाराज हो जाओगे और फिर कभी आने के लिये नहीं कहोगे। मैं बड़ी' अगली' और बदसूरत हूं, तारकोल के पीपे की तरह काली और मोटी। आप देख कर डर जायेंगे। बिना देखे बातचीत की दोस्ती अच्छी; आने को कहते तो हो।"

मिस नाथ की बात पर हंस कर लुम्बा ने आग्रह किया—"हम लोग मिलना चाहते हैं तो एक बार आने में हर्ज क्या है?"

मिस नाथ ने आश्वासन दिया कि वह आयेगी पर तीन-चार दिन बाद। किसी दिन अपने आप ही फोन करके समय बता देगी।

श्रीमतीजी ने समझाया—"वह मजाक करती है कि तुम देखो तो हैरान रह जाओ। कभी ऐसा भी हो सकता है? आदमी के स्वर और बोलने के ढंग से क्या उसके रूप-रंग का अनुमान नहीं हो सकता?"

मिस नाथ फिर भी नहीं आयी।

मिस नाथ तो नहीं आयी परन्तु हम लोग प्रायः ही लुम्बा से मजाक करते रहते कि वह लड़की की आवाज सुनकर ही मोहित हो गया पर लड़की ने उसकी परवाह ही नहीं की। बच्चे भी समझे या बिना समझे हम लोगों से सुन कर मजाक में भाग लेने का यत्न करते। लुम्बा मुस्कराकर टाल जाता।

एक दिन श्रीमती जी ने मुझे अलग से कहा—"जाने दो, यह मजाक न किया करो। शायद वह बुरा मान जाता हो। देखा नहीं, कभी-कभी बड़ा सीरियस हो जाता है।" परन्तु बच्चों ने मजाक शुरू कर दिया था। उन्हें रोकना मुश्किल हो गया।

खाने की मेज पर आते ही नन्दी कहे बिना न मानती--"ओहो, मामाजी उदास हैं। भई उदास न हो जी, मिस नाथ को बुला देंगे।" उस समय लुम्बा के सामने लड़की को डांटना भी उचित न होता कि कहीं बात सचमुच ही गम्भीर न बन जाय।

टूर्नामेन्ट के अन्त में फाइनल मैच भी लखनऊ छावनी में ही होने वाला था। पूना से टीम के आने की प्रतीक्षा थी। लुम्बा छावनी नहीं जा रहा था। कभी जाता भी

तो घण्टे भर में लौट आता। प्रायः ड्राइंग रूम में आराम कुर्सी पर पसरा रहता। यह स्पष्ट जान पड़ रहा था कि उसका मन नहीं लग रहा।

एक दिन सन्ध्या मेरे दफ्तर से लौटते ही नन्दी और मक्कू ने कूद-कूद कर और चिल्ला-चिल्ला कर घोषणा की—मामा जी ने मामी जी का चित्र बनाया है। अम्मा जी कह रही हैं बड़ा ही सुन्दर है और मुझे हाथ पकड़ कर ड्राइंग रूम में ले गये।

लुम्बा कालीन पर लेटा था। सिनेमा पत्रिकाओं के तीन चित्र निकाल कर सामने रखे हुये थे। पुराने यूरोपियन कलाकारों के चित्रों का एक संग्रह भी सामने पड़ा था। इन सब चित्रों में से जाने क्या-क्या और कौन सा अंश लेकर उसने एक युवती के चेहरे का पार्श्व चित्र छाया में (प्रोफाइल सिलुयट) बनाया था। कुछ उठी हुई सुघड़ ठोड़ी, भवों के बीच के दबाव से उठा हुआ सुन्दर माथा, बिखरी उड़ती-उड़ती सी लटें, लम्बी पलकें, तीखी नाक और हंसी को रोकने की चेष्टा में उठे हुए कल्ले, सजीव चुलबुलापन, बुद्धि का प्रकाश। खरादी हुई लम्बी गर्दन से अनुमान होता था युवती का शरीर तलवार के समान सुता हुआ और छरहरा होगा। चित्र बहुत अच्छा लग रहा था। लुम्बा उसमें इतना तन्मय था कि मेरे आने की ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया और कूची और स्याही लिये किसी न्यूनता को पूरा करता रहा।

श्रीमती जी यह चित्र बनाते हुये उसे दो बार देख गयी थीं और विघ्न न डालने के लिये चुप थीं।

चित्र पूरा हो जाने पर लुम्बा ने पूछा—"कैसा बना है ?"

चित्र तो बहुत अच्छा बना ही था। मैं बहुत से चित्रों को ध्यान से देख कर भांपने का यत्न कर रहा था कि यह किस चित्र की नकल समझी जा सकती है पर भांप न पाया।

श्रीमती जी ने मुस्कराकर लुम्बा से पूछा—"सच बता ? तूने किसका चित्र बनाया है ?"

"जिसका समझ लो !" लुम्बा ने उत्तर दिया।

"तो फिर इस पर लिख दें मिस नाथ" श्रीमती जी बोलीं।

"आल राइट, जैसा कहें।" लुम्बा ने उत्तर दिया, "वह कौन यहां आकर देखेगी और नाराज होगी। एण्ड आई केयर ऐ डैम फार इट।"

लुम्बा ने स्याही भरी कूची ले चित्र के नीचे बचे कागज पर लहरियादार बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया, 'मिस नाथ।' श्रीमती जी ने चित्र को रेडियो पर रख दिया। वह जगह ही ऐसी है कि कमरे में आते ही वहां नजर पड़ती है। रेडियो की बगल में ही बड़ा सोफा है जहां हम मेहमानों को प्रायः बैठाते हैं।

लुम्बा तो टूर्नामेंट समाप्त होने पर रांची लौट गया पर उसका बनाया हुआ चित्र यहीं रहा ।

लुम्बा को रांची लौटे दो महीने बीते होंगे कि एक दिन दोपहर बाद श्रीमतीजी ने मुझे दफ्तर में फोन किया कि मैं सवा छः बजे तक जरूर आ जाऊं । उन्हें मिस नाथ ने फोन किया था कि उसकी बदली जालंधर छावनी में हो गयी है । हम लोगों से मिलने आने का वादा पूरा करने वह सवा छः बजे आयेगी ।

मैं अभी बरामदे में ही पहुंचा था कि महिला से भरी हुई एक रिक्शा आ पहुंची । मैं महिला के शरीर और रूप के प्रभाव से शिष्टाचार के नाते 'आइये' भी न कह पाया था कि उन्होंने रिक्शा से उतर कर मेरा नाम ले प्रश्न किया कि क्या यहीं रहते हैं ? वह श्रीमती जी से मिलने आयी हैं और उन्हें मिस नाथ कहते हैं ?

स्वागत-शिष्टाचार में रह गयी अपनी चूक की झेंप से मैंने जाली के स्प्रिंगदार दरवाजे खींचकर हाथ के संकेत से प्रवेश के लिये अनुरोध किया । मस्तिष्क में कौंद गया—'तारकोल के पीपे सी·····'

"पूरा ही दरवाजा खोलना होगा ।" मिस नाथ ने मुस्कराकर कहा और दूसरे किवाड़ को भी खोलकर भीतर हो गया । उसे ड्राइंग रूम में ले जाकर रेडियो के समीप बड़े सोफे पर विराजने का अनुरोध किया । सूचना पाकर श्रीमती जी भी आ गयीं । ठंडक के लिये पर्दों के कारण ड्राइंग रूम में अंधेरा रहता ही है । कमरे में आते ही श्रीमतीजी ने बड़ी बत्ती और रेडियो के ऊपर लगी बत्ती को भी जला दिया । यत्न से की गयी ड्राइंग रूम की सजावट अतिथियों को दिखाने में सभी को सन्तोष होता है ।

श्रीमतीजी का इन्तजाम चुस्त रहता है । उन्होंने कुछ मिठाई और नमकीन मंगाकर रख लिया था । चाय भी बिना विलम्ब आ गयी पर रेडियो पर से मिस नाथ का काल्पनिक चित्र हटा लेने का ध्यान किसी को नहीं आया था ।

रेडियो सेट पर बत्ती जलते ही मिस नाथ की आंख बरबस उस चित्र पर जा पड़ी । उस पर बनी मोटी लिखावट आंख में गड़े बिना कैसे रह सकती थी ।

मिस नाथ कुछ क्षण देखती रह गयी ।

श्रीमती जी की इस चूक पर बहुत क्रोध आ रहा था । उनकी ओर दृष्टि जाने पर देखा कि वे भी अपनी भूल के लिये अनुताप से मरी जा रही थीं पर अब क्या हो सकता था ।

चित्र से नजर हटाकर मिस नाथ हम लोगों की ओर देखकर मुस्कराने का यत्न कर बोलीं—"मैंने ठीक ही कहा था न ?·····मेरे मिलने न आने से ही अधिक अच्छा

होता । कैप्टेन तो तभी रांची लौट गये थे न·····ऐसा कई बार हो चुका है ।"

श्रीमतीजी ने अपने हृदय की पूरी सहृदयता और सचाई बटोर कर विश्वास दिलाया—"वाह, क्यों हम लोगों को तो आपसे मिलकर बहुत ही संतोष हुआ है । आप तो जा रही हैं नहीं तो मैं बार-बार आप के यहां जाती और आप को भी यहां आना पड़ता ।"

छोटी मेज पर पड़ी चाय और मिठाई ध्यान पाने की प्रतीक्षा कर रही थी । हम दोनों ने उसके लिए बहुत आग्रह किया पर मिस नाथ ने एक बार जो कहा कि चाय पीकर ही चली थी और शाम को वह कभी कुछ नहीं खाती तो किसी चीज को हाथ न लगाया ।

श्रीमतीजी ने कुछ फल भी मंगाकर और काटकर रखे पर स्पष्ट था कि मुंह खोल सकना मिस नाथ के बस की बात न थी ।

प्यालों में भरी चाय भाप छोड़-छोड़कर ठण्डी हो रही थी । मिस नाथ के हृदय में जो भाप उठ रही थी उसके लिये आंखों और होठों पर लगी संयम की मोहरें राह बन्द किये थीं इसलिये ठंडा पसीना आ रहा था ।

कुछ ही मिनिट में मिस नाथ उठ खड़ी हुई । उन्हें उसी शाम कुछ और लोगों से भी मुलाकात कर लेना जरूरी था । उन्हें सड़क तक पहुंचा कर लौटते ही वह चित्र रेडियो पर से उठा लिया । फेंक देने के लिये फाड़ना ही चाहता था कि श्रीमतीजी ने मेरे हाथ पकड़ लिये—"न—न ।"

मैं अवाक् उनकी ओर देखता रहा ।

"फाड़ो मत !" उन्होंने कहा, "अब वह यहां फिर कभी नहीं आयेगी और असल में तो यही उसका, उसके मन और व्यवहार का असली चित्र है·····दिखाई चाहे वह जैसी देती हो !"

—:०:—

कम्बलदान

मिसेज़ बलूरिया सुबह का काम जल्दी निबटा देने का यत्न कर रही थीं।

उन्होंने आया से कह दिया था कि बेबी को जल्दी तैयार कर दो। बेबी ने नाश्ता कर लिया तो उसे खेलने के लिए आया के साथ पार्क में भेज दिया। अब वह मिस्टर बलूरिया की प्रतीक्षा कर रही थीं।

मि० बलूरिया ढीले-ढाले ढंग के आहिस्ता-आहिस्ता हाथ-पांव चलाने वाले आदमी हैं। सुबह तैयार होने में उन्हें काफी समय लग जाता है। मिसेज़ बलूरिया पति को नाश्ता कराये बिना अर्थात नाश्ते के समय मेज पर उनके साथ बैठे बिना बाहर कैसे जायें ? मन में खुदबुद लग रही थी। पिछली सन्ध्या उन्होंने टायपिस्ट लीला को एक नये ढंग का ब्लाउज पहने देखा था। सभी की नजर उसकी ओर उठ रही थी। लीला ने कहा था—सुबह नौ बजे आ जाओ तो दफ्तर जाते समय रास्ते में दूकान बता दूंगी पर साहब अभी कपड़े ही पहन नहीं पाये थे।

नौकर ने कमरे में झांक खबर दी—"कोई बाई लोग आया है।"

मिसेज़ बलूरिया ने बाहर आकर देखा। बालिका पाठशाला की अध्यापिकाएं थीं। चन्दा मागेंगीं और क्या ? मिसेस बलूरिया को बुरा सा लगा।

मिसेज़ बलूरिया का अनुमान ठीक ही था। अध्यापिकाओं ने दांत निकाल कर प्रार्थना सी की—"स्कूल का सालाना जलसा है।···उपमंत्री प्रधान पद ग्रहण करेंगे। हम पुरस्कार वितरण भी करना चाहते हैं पर किसी महिला से ही करायेंगे···आप लोगों का ही सहारा है।"

दांत से ओंठ काटते हुए मिसेज़ बलूरिया ने कहा—"अच्छा, जरा साहब से बात करके आती हूं, बैठिये !"

साहब ड्रेसिंगरूम में टाई बांध रहे थे। टाई की नाट ठीक नहीं आ रही थी। मिसेज़ ने कठिन परिस्थिति बतायी—"कुछ तो देना ही होगा। तुम भी चलना।

उपमंत्री जी प्रधान होंगे। तुम उनसे परिचय करना चाहते थे न ?" और पूछा, "बताओ क्या दे दूं ?"

साहब टाई की गांठ ठीक करने के लिए गर्दन को ऐसे उठाये हुए थे जैसे नमक के पानी से गरारे कर रहे हों। आइने में टाई की गाँठ को ध्यान से देख कर बोले—"दे दो, एक सौ एक दे दो।"

विस्मय के कारण ऊंची हो गयी आवाज में मिसेज़ बलूरिया ने पूछा—"एक-सौ-एक ?"

इस बार नजर मिसेज की ओर करते हुए मिस्टर बलूरिया बोले—"अरे तुम्हें पुरस्कार वितरण का प्रधान बनाना चाहती हैं तो इससे कम क्या दोगी ?"

मिसेज़ बलूरिया ने सोचकर कहा—"सिलाई के स्कूल वाले तो बार-बार मिसेज़ नरिचा से ही इनाम बटवाते हैं।"

मिस्टर बलूरिया ने पत्नी की ओर मुंह कर समझाया—"चन्दा देती होंगी और एडीटर की बीवी है। तुम चन्दा दोगी, तुम्हें बना देंगे। इन लोगों का क्या है।"

मिसेस बलूरिया ने दिल कड़ा करके एक-सौ-एक का चेक काटकर बालिका-पाठशाला की अध्यापिकाओं को दे दिया। जलसे का समय भी एक बार और पूछ लिया और निश्चय दिला दिया कि साहब के साथ समय पर आ जायेंगी।

बालिका शाला के जलसे में मिसेज और मिस्टर बलूरिया भी ऊंचे मंच पर बैठे हुए थे। शुरू से ही मिसेज बलूरिया का दिल धक-धक कर रहा था। स्कूल के कार्यकर्त्ताओं को धन्यवाद देने के लिये उन्होंने जो वाक्य लिखे थे, उन्हें मन ही मन में दोहराती जा रही थीं।

स्कूल के मंत्री की रिपोर्ट और उपमन्त्रीजी के भाषण के बाद सूचना दी गयी कि अब छात्राओं को पुरस्कार दिया जायेगा। मिसेज़ बलूरिया का हृदय और भी वेग से धड़कने लगा। उन्होंने जरा खाँस कर अपने आपको संभाला। पुरस्कारों से भरी मेज मंच पर आ गयी। मिसेज़ बलूरिया का सिर घूमने लगा जैसे उनके सिर पर हालीकाप्टर उड़ रहा हो। स्कूल की मुख्य अध्यापिका ने मंच पर आकर सूचना दी—"अब श्रीमती नरिचा छात्राओं को पुरस्कार बांटेंगी……।"

मिसेज़ बलूरिया को जान पड़ा कि हालीकाप्टर उनके सिर पर ही गिर पड़ा। मुख्याध्यापिका ने और क्या कहा, वे सुन न सकीं : कुछ मिनिट बाद जब सांस ठीक से चलने लगी तो सुना कि मुख्याध्यापिका कह रही थीं—"नगर के गरीब बच्चों के लिए रात्रि-पाठशालाएं खोल कर, गरीब मुहल्लों में……सफाई का काम कराके उन्होंने जो समाज की सेवा की है, उसके लिये हम सब मिसेज नरिचा के प्रति कृतज्ञ

हैं। हम अपना आदर उनके प्रति प्रकट करना चाहते हैं.....।"

× × ×

बालिकाशाला के जलसे के बाद से मिसेज बलूरिया की तबियत बहुत सुस्त रहने लगी थी। घर में खाली बैठना पड़ता तो वे अखबार पर नजर दौड़ा लेती थीं। उसमें उनका ध्यान विज्ञापनों की ओर ही अधिक जाता था। रेडियो के विज्ञापन, पंखों के विज्ञापन, नई साड़ियों के विज्ञापन, यूडीकोलोन के विज्ञापन, नये ढंग के फर्नीचर के विज्ञापन.....। इससे उन्हें मालूम हो जाता था कि खरीदने लायक चीजें बाजार में कितनी हैं ? विज्ञापनों के चित्रों के अतिरिक्त दूसरे ढंग के चित्र भी अखबार में रहते हैं। प्रायः नेताओं और हार पहिने मन्त्रियों के चित्र, जिनके सूखे हुये चेहरों पर मोटे-मोटे चश्में चढ़े होते थे या मोटी-मोटी तोंदें और उन पर गलफुल्ले चेहरे, जैसे मटके पर बदना रखा हो। मिसेज़ बलूरिया को ऐसे चित्रों के प्रति कोई आकर्षण न था। सामने का पृष्ठ यों ही पलट देती थीं पर अब प्रायः तिर्छी निगाह से देख लेतीं क्योंकि कई बार मिसेज नरिचा का चित्र छप चुका था, कुछ स्वयं-सेवकों के साथ झाड़ू और टोकरी लिये, साड़ी का फैंटा कमर में कसे। मिसेज बलूरिया ने अखबार के धुंधले चित्र में यह देखने की काफी कोशिश की कि मिसेज नरिचा ऊंचा ब्लाउज पहने हैं या पुराने फैशन का; अनुमान था कि चोली है।

कुछ दिन के बाद मिस्टर बलूरिया ने मिसेज को अखबार में छपी खबर दिखाई कि मिसेज नरिचा ने एक फिरतू औषधालय, गरीब मुहल्लों में दवाइयां बांटने के लिये संगठित किया है।

इस बार मिसेज बलूरिया अपना क्रोध नहीं दबा सकीं; कह ही बैठीं--"कितनी चालाक औरत है। जाने कहां से ऐसी बात निकाल लेती है कि दुनिया भर में नाम हो जाता है।" और फिर बलूरिया पर क्रोध उतारा, "उसका क्या है, नरिचा उसे ढंग बताता है। मदद करता है। तुम्हें तो कुछ परवाह ही नहीं। तुम्हें अपने बिजनेस से कभी फुर्सत नहीं मिलती।"

अखबारों में कई दिन से भिखमंगों की समस्या पर आन्दोलन हो रहा था। सफेद पोश जनता और सरकार दोनों ही भिखमंगों से परेशान थे। कुछ लोग सरकार पर जोर डाल रहे थे कि भिखमंगों के लिये कुछ शरणालय बना दिये जांयें। ऐसी भी खबरें छपा करती थीं कि मिसेज नरिचा और कुछ लोगों ने, जनता के चन्दे और सरकारी सहायता से एक 'भिक्षुक शरणालय' बनाया था, जहां निस्सहाय लोगों से उनके सामर्थ्य के अनुसार काम लिया जाता था और पेट भर भोजन दे दिया जाता

था लेकिन जिन्हें भीख मांगने का चस्का लग गया था, उन्हें एक जगह बंधकर काम करने में और बिना मांगे खाने से सन्तोष ही न होता था। पुलिस भिखारियों को पकड़ कर शरणालय में पहुंचा देती और भिखारी फिर मांगने के लिये भाग जाते। ऐसे भिखारियों को खोज-खोज कर बटोरना पुलिस के लिये बड़ी भारी सिरदर्दी थी।

मिसेज से बेपरवाही और सहायता न देने का ताना सुन कर मि० बलूरिया ने सिर खुजाते हुये कहा—"हम बतायें, बड़ा कड़ा जाड़ा पड़ रहा है। दो-अढ़ाई सौ रुपया तुम डालो और सौ-पचास लोगों से भी थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा कर लो। हमारे गोदाम में बहुत सा पुराना कम्बल पड़ा खराब हो रहा है। सस्ते में दिला देंगे। तुम मंगलवार के मंगलवार भिखमंगों को कम्बल बांटना शुरू कर दो।" माथे पर त्योरियां चढ़ा कर बलूरिया साहब ने कहा, ऐसी तरकीब बता दी है तुम्हें कि मिसेज नरिचा का फिरतू औषधालय और गरीबों के मुहल्लों में भंगीपना करना सब हवा हो जाय·····"

मिसेज बलूरिया का मन किलक उठा। मुस्कान से फैल गये होटों से दांत बाहर निकाल कर उन्होंने कहा—"सचमुच; यह बात तो अखबारों में जरूर छपेगी।"

प्रचार में असफलता का कोई अवसर न रह जाने देने के लिये बलूरिया साहब ने दो स्थानीय अखबारों के संवाददाताओं को भी चाय पर बुला कर मिसेज बलूरिया की 'गरीब सहायक कमेटी' के कम्बलदान यज्ञ की पूरी-पूरी सूचना दे दी।

इस सावधानी का फल भी अच्छा ही हुआ। मिसेज बलूरिया के कम्बलदान यज्ञ की घोषणा; तिथि और समय की सूचना सहित, अखबारों में कई बार छप गयी। मिस्टर बलूरिया ने इस बात का भी प्रबन्ध कर दिया कि कम्बलदान के समय जब बहुत से भिखमंगे कोठी के सामने खड़े हों, और मिसेज बलूरिया कम्बल बांट रही हों, तो फोटो ले लिये जायें और अखबारों में छप जायं।

सब काम ठीक ढंग से हो रहा था पर कम्बलदान की तारीख से तीन दिन पहले झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सेठ तोरियावाला ने मिसेज बलूरिया के कम्बलदान फण्ड में पांच सौ रुपया दिया था। वे चाहते थे कि कम्बलदान उनकी हवेली पर हो। सेठ तोरियावाला का आग्रह मान लेना मिसेज बलूरिया के लिये सम्भव नहीं था। अखबारों में पहले ही छप चुका था कि कम्बलदान मिसेज बलूरिया के बंगले पर होगा। जिद्दा-जिद्दी में मिसेज बलूरिया ने पति से कह कर तोरियावाले के दान की रकम लौटा देने की धमकी दे दी। तोरियावाला को यह ढंग अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"अच्छा देखा जायगा।"

भिखमंगे अखबार नहीं पढ़ते इसलिये बलूरिया साहब ने समझदारी और भिख-

मंगों के प्रति न्याय के ख्याल से कम्वलदान की डौंडी भी पिटवा दी थी कि अमुक समय पर उनके वंगले पर अपाहिजों और भिखारियों को कंबल बांटे जायेंगे ।

मंगलवार के दिन खूब सुबह ही वलूरिया साहब की कोठी के सामने सड़क पर भिखारियों की भीड़ जुटने लगी । कोठी का दरवाजा वन्द था और दरवान चौकसी पर खड़ा था ।

वेबी की आया ने आकर बताया—सौ से ज्यादा भिखारी जमा हैं ।

कुछ देर वाद नौकर ने वताया—अढ़ाई तीन सौ से कम नहीं होंगे ।

मिसेज वलूरिया भी एक वार जाकर देख आयीं । उनका ख्याल था कि हजार से ऊपर आदमी होगा । भीड़ बढ़ती जा रही थी ।

कम्वलों का ढेर वराम्दे में लगा दिया गया था । आठ वजे का समय कम्वलदान यज्ञ के लिये निश्चित था । समय तो हो चुका था । मिसेज वलूरिया को बार-बार रोमांच हो आता था । मन में उठते आवेश के कारण मुंह से वात नहीं निकल पाती थी । सोच रही थी जरा ठहर जाये ताकि कुछ लोग और आ जायें तो अच्छा लगे । अखबार का फोटोग्राफर भी अभी नहीं आया था । जल्दी भी क्या थी ?

सड़क पर से वहुत जोर का हल्ला सुनाई दिया ।

मिसेज वलूरिया ने उमंग कर आया से कहा—"अरी देख तो क्या है ? कितने लोग आ गये ?"

आया लौटी तो भय और विस्मय से आंखें फैलाये; गाल पर उंगली रख कर वोली—"हाय बीबी जी, वे तो सब लोग भाग गये । ढेरों पुलिस आ गई है मोटरों में वैठकर । सब भिखारियों को पकड़ सरनाला में ले जा रही है···।"

मिसेज बलूरिया के पांव तले से धरती निकल गई । कुछ बोल पाना सम्भव न था ।

साहब कपड़े पहन कर "क्या है···क्या है ?" पूछते हुए बाहर आये ।

मिसेस बलूरिया कम्बलों के ढेर के पास खड़ी आंचल से आंखें पोंछ रही थी । भिखारियों के प्रति करुणा से वहते आंसू पोंछ कर विगलित स्वर में उन्होंने कहा :—

देखो तो, कैसा पांपी समय आ गया है, लोग गरीबों को कम्बल भी नहीं लेने देते······"

—:○○○○:—

आबरू

बम्बई में समुद्र के किनारे, चौपाटी के मैदान और सड़क के बीच कुछ बेंचें पड़ी हुई हैं। एक बेंच की पीठ सड़क की ओर है तो दूसरी की समुद्र की ओर। लोग यहां सूर्यास्त के बाद आधी रात तक बैठे रहते हैं। कुछ लोग सड़क पर लगी बिजलियों की तेज रोशनी में आती-जाती मोटरों या पैदल चलते लोगों को देखते रहते हैं, कुछ सड़क की ओर पीठ करके अन्धेरे में गरजती और फेन उछालती लहरों की ओर नजर लगाये बैठे रहते हैं।

शिव साढ़े सात बजे आकर एक बेंच पर बैठ गया था। आधे घन्टे तक वह मालाबार हिलसे उतरती मोटरों की ओर नजर लगाये प्रतीक्षा करता रहा। वह सड़क की तेज रोशनी से ऊब गया तो 'स्विमिंग बाथ क्लब' की ओर अंधेरे में एक दूसरी बेंच पर सड़क की ओर पीठ करके बैठ गया। उसे एकान्त खोजने के लिए यहां आकर बैठने की आदत नहीं है। बस, उसी दिन आकर बैठा था।

शहर में प्रजातंत्र दिवस के उपलक्ष में रोशनी की प्रतिद्वन्द्विता की धूम थी। शिव को रोशनी देखने जाने की विशेष इच्छा नहीं थी परन्तु एक मित्र ने उसके यहां आकर आग्रह किया था—"तुम साढ़े-सात बजे आ जाना, मैं मालाबार हिल से गाड़ी लेकर आऊंगा। तुम्हें चौपाटी से ले लूंगा। फोर्ट और कोलाबा का एक चक्कर लगा लेंगे।"

वायदा करने वाला मित्र आठ बजे तक भी न आया तो शिव खिन्न होकर सड़क की चकाचौंध रोशनी से बचने के लिए अन्धेरे में जा बैठा। एक दम घर लौटकर क्या करता ? जाता भी तो किस के यहां ? सभी लोग तो रोशनी देखने गये होंगे। अकेले बैठकर समय काटना उसे पसंद न था। ऐसी-वैसी बातें याद आने लगतीं थीं और मन भारी-सा हो जाता था। उन बातों को सोचने से फायदा भी क्या था ?

सामने समुद्र की लहरें गरज-गरजकर रेतीले मैदान की छाती पर बढ़ आतीं और

मानो किसी जगह को छूकर पीछे हट जातीं। कुछ और गर्जन होती, झाग उठती और लहरें विलीन हो जातीं और फिर उठकर बढ़ आतीं। यही क्रम जारी था। शिव सोच रहा था :—उमंगों से व्याकुल यह लहरें पृथ्वी पर उतनी ही दूर बढ़ती हैं कि पीछे लौट भी सकें इसीलिए ये लहरें निरन्तर उठ सकती हैं।

पुरानी बातों की याद ऐसे ही शुरू हो जाती थी। उसके जीवन में एक ही बार बहुत जोर से लहर उठी थी, इतनी जोर से कि वह लहर उसके परिवारिक जीवन के समुद्र से सम्बन्ध तोड़कर रेत के मैदान में इतनी दूर बढ़ गयी कि फिर लौट ही न सकी, वहीं सूख गयी। यदि उसके जीवन की उस लहर में इतना वेग न होता, यदि उसके जीवन की लहर ऐसी ही होती जैसी दूसरे लोगों के जीवन में उठा करती है, तो उसके जीवन में भी लहरों के उठने, विलीन होकर फिर उठने का क्रम जारी रह सकता पर इस तरह सोचने से फायदा क्या ? उसका मन उमंगहीन और बूढ़ा हो चुका है।

बेंच में एक झटका-सा अनुभव हुआ जैसे कोई दूसरा भी आकर बैठ गया हो। शिव ने कनखी से देखा, एक स्त्री और एक छोटी लड़की साथ में। संकोच-सा अनुभव हुआ। स्त्री के सामीप्य से पुरुष को कुछ अनुभव हो ही जाता है। यदि दसेक बरस की लड़की साथ न होती तो और भी खटकता। शिव को कुछ सोचे बिना उठ जाना पड़ता परन्तु अब उसने सोचा—"ये जानें; हम तो पहले से बैठे हैं।"

स्त्री लड़की से धीमे-धीमे बात कर रही थी। शिव ने सुनने और समझने की कोशिश नहीं की पर इतना मालूम हो गया कि स्त्री की आयु पच्चीस-बरस के लगभग होगी। मतलब यह कि वह अपने लिए जिम्मेवार थी। शिव सोच रहा था कि हम क्यों उठ जायें पर अपरिचित स्त्री के समीप आकर बैठ जाने की चेतना को भी भूल न पा रहा था।

"क्या चुप ही बैठे रहेंगे ?" सुनाई दिया। स्वर में संकोच और आग्रह का पुट था। शिव ने आस-पास देखा, स्त्री की आंखें समुद्र की ओर थीं। समीप किसी दूसरे व्यक्ति को न देखकर शिव ने उत्तर देना आवश्यक समझा, "क्या मुझ से कुछ कहा ?"

"तो यहां और कौन है ?" स्त्री ने शिव की ओर नजर कर मुस्कराहट से उत्तर दिया।

"क्या कहूं ?" शिव बोला, "मुझे कुछ कहना नहीं है। आपने मुझे किसी दूसरे आदमी की जगह तो नहीं समझ लिया ? मेरा आपसे परिचय नहीं है।" स्त्री झेंप से घबरा न जाये इसलिये शिव स्वर को कोमल बनाकर इतनी बात कह गया।

"पहले से परिचय न हो तो बात नहीं करनी चाहिये ?" स्त्री ने फिर मुस्करा दिया।

"नहीं, ये तो मैं नहीं कहता।" शिव बोला, "पर मुझे तो कुछ कहना नहीं है।"

"तो फिर यहां अन्धेरे और सूने में आकर बैठने की जरूरत क्या ?" स्त्री प्यार की धृष्टता से बोली, "परेशान और थका आदमी रात में ऐसी जगह बैठ कर बातचीत करके मन हल्का कर लेता है।"

शिव कुछ कह न सका पर उस एकान्त में स्त्री की स्नेह के अधिकार की धृष्टता बुरी न लगी। उसके कपड़ों की गन्ध, जैसी कि मन को गुदगुदा देने वाली गंध प्रायः स्त्रियों के सामीप्य से अनुभव होती है—उसे अच्छी ही लगी। उसकी बातों से अतीत की वह बात, जो बेंच पर झटका अनुभव होते समय याद आने लगी थी, चित्र बन कर सामने आ गयी :—वह दिन भर शांति से मिलने के लिये तड़पता रहता था। सन्ध्या समय 'बीच-कैंडी' पर शांति आती थी तो उसे लेकर वह 'भूलेश्वर' के नीचे समुद्र के किनारे जाता था। चट्टानों के बीच में ऐसी जगह खोज कर बैठते थे जहां उन्हें कोई देख न सके। शांति को लौट चलने की इतनी जल्दी रहती थी कि बात भी न हो पाती। एक दूसरे का हाथ पकड़े, आंखें मिलाये रह जाते और बस, एक दिन एक हो जाने के वायदे दुहरा लेते··· .....

"आप चाय पी चुके ?" शिव को सुनाई दिया और अतीत के चित्र का ध्यान टूट गया।

"मैं इस समय चाय नहीं पीता हूं।" शिव ने उत्तर दिया मानो चाय का निमंत्रण स्वीकार न कर सकता हो। देर से चाय पीने से उसकी संध्या की भूख मारी जाती है। वह सोच ही रहा था कि कहे—आप पीना चाहती हैं तो चलिये दुकान तक साथ चलूं ?·····चाय की प्याली सामने होने पर बातचीत का सिलसिला जमने में सहायता मिलती है। आठ-दस आने में कुछ बन बिगड़ भी नहीं जाता।

स्त्री फिर बोल उठी—"हमें ही पिला दीजिये।

स्त्री का स्वयं चाय पीने के लिये आग्रह करना शिव को अभद्रता-सी लगी। किसी के लिये स्थान कर देना एक बात होती है और किसी को परे हट जाने के लिये कह देना दूसरी बात। मन का भाव बदल गया।

"यह तो मेरा काम नहीं है।" शिव ने रूखा-सा उत्तर दे दिया।

"अच्छा तो इस लड़की को ही पिला दोजिये।" स्त्री ने कह दिया।

शिव को जान पड़ा जैसे यह बात केवल उसे शर्मिन्दा करने के लिये ही कही गयी हो।

"क्यों, मुझे मतलब ?" शिव ने और भी रुखाई दिखायी।

शिव भद्र-समाज की ऐसी अनेक महिलाओं को जानता है जो पुरुषों को अनुगृहीत

करने के लिये अपनी सेवा का अवसर दे देती हैं। शिव को ऐसे अनुग्रह की इच्छा नहीं थी। अचानक ख्याल आया—लड़की भूखी न हो।

अपने व्यवहार के प्रति लज्जा-सी अनुभव हुई। उसने लड़की और स्त्री की ओर कनखी से देखा। अच्छे-भले कपड़े थे। तर्क किया :—भूखों का ये ढंग होता है? शिव की कल्पना में फिर शांति के साथ बितायी संध्याओं के चित्र घूमने लगे।

"आप सिगरेट नहीं पीते?" एक मिनिट बाद शिव को फिर सुनाई दिया।

फिर अतीत के चित्र का ध्यान टूट गया और उसके मन में समीप बैठी स्त्री के लिए तिरस्कार का भाव पैदा हो गया :—सिगरेट पीने वाली स्त्री कैसी हो सकती है?

"क्यों आप पीती हैं?" शिव ने सिगरेट के लिए जेब में हाथ डाले बिना ही पूछा।

"नहीं, आप पीजिये।···खुशबू अच्छी लगेगी।···जान पड़ेगा कोई पास बैठा है।" स्त्री ने निस्संकोच आत्मीयता से कहा।

शिव का भाव बदल गया। मन में अच्छा लगा कि उसका सिगरेट पीना किसी को अच्छा लगेगा। स्त्री की मनुष्य के सामीप्य के लिये चाह के प्रति भी शिव को सहानुभूति अनुभव हुई। सामीप्य बढ़ाने के लिये उसने जेब से सिगरेट निकालते हुए कहा—"आप भी पीजिये तो खुशबू के साथ ज़ायका भी आयेगा। अकेले पीने में क्या अच्छा लगेगा?"

स्त्री ने बेंच पर उसकी ओर झुकते हुए धन्यवाद में मुस्कराकर उत्तर दिया—"नहीं, आप पीजिये, हम नहीं पीतीं। एक और इल्लत लगाने से फायदा। पीने लगें तो बार-बार दिल चाहेगा।"

शिव को स्त्री की समझदारी की बात भी अच्छी लगी। समझदार, जिम्मेवार स्त्री के साथ निर्भय बैठकर बातचीत करते हुए सिगरेट पीने का संतोष, शांति के साथ भय और व्याकुलता में बितायी सन्ध्याओं के चित्र पर जाल की तरह फैलने लगा।

"बात तो आप ठीक कहती हैं।" शिव ने स्वीकार किया और पूछा, "आप यहां कहां रहती हैं? आप यू० पी० की जान पड़ती हैं?"

"जी हां" स्त्री ने हामी भरी, "यहां नज़दीक ही ग्रांटरोड के पुल के पार।"

"आप के घर के लोग तो होंगे?"

"हैं ही" स्त्री ने समुद्र की ओर आंखें किये उत्तर दिया, "घर के लोग तो सभी के होते हैं।

"आप यहां उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं?"

"प्रतीक्षा किसी खास की नहीं।"

ठीक से समझने के लिये शिव ने पूछा—"तो फिर रात में अकेली कैसे आयीं?"

"अकेले आना पड़ता है तो अकेली ही आ जाती हैं, क्या करें ? बैठे-बैठे कैसे चल सकता है ? स्त्री ने नीचे रेत की ओर देखकर चप्पल से रेत पर लकीरें-सी बनाते हुए उत्तर दिया।

बम्बई में यों मिल जाने वाली स्त्रियों के बारे में शिव ने अनेक बातें सुनी थीं। सिगरेट से कश खींचता हुआ वह सोच रहा था, इसका ढंग तो वैसा नहीं जान पड़ता। उसे फिर सुनाई दिया—"यहां बैठे-बैठें क्या कीजियेगा ? चलिये न कहीं थोड़ा घूमें ?"

शिव को और भी विचित्र जान पड़ा। स्त्री को समझा पाने के लिये प्रकट में उसने पूछा—"कहां ?.....क्या रोशनी देखने ?"

"रोशनी में क्या रक्खा है ? लड़की जिद् कर रही थी, इसे दिखाने ले आयी। .....चलिये आप के यहां जगह हो तो वहां चलें; या हमारे यहां चलिये !" स्त्री जल्दी से अंतिम बात कह गयी।

शिव का हाथ सिगरेट को मुंह की ओर ले जाते हुए रुक गया। स्त्री के इस प्रस्ताव के धक्के से वह सहसा बीस वर्ष पीछे जा पड़ा और उसकी आंखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा:—अधीरता और व्याकुलता में किया एक रात का दुस्साहस। शिव के पिता ने शांति से विवाह की अनुमति नहीं दी तो वह अपना घर छोड़कर अलग कमरा लेकर रहने लगा था। एक दिन अपनी समझ-बूझ प्रेम के ज्वार में डुबोकर वह शांति को अपने कमरे में ले गया। वे दोनों सभी कुछ भूल गये थे तो घड़ी का ही ध्यान उन्हें कैसे बना रहता ! आधी रात बीत जाने पर उन्हें होश आया।

"हाय अब क्या होगा ?" शांति कांप उठी थी। उसका भय से पीला चेहरा देख कर, उसे आलिंगन में लिपटा कर शिव ने सान्त्वना दी थी—"जो हो गया, हो गया। अब तुम घर मत जाओ। आज से हम एक हैं। यह तुम्हारा घर है।" शिव सब कुछ झेलने के लिए तैयार था।"

"नहीं, यह कैसे हो सकता है ?" शांति नहीं मानी।

शिव शान्ति को उसके घर के समीप तक छोड़ने गया था। शांति ऐसे चल रही थी मानों पशु बधिक के काठ की ओर जा रहा हो पर पीछे हट भी न सकता हो। शांति ने अपने घर की गली के मोड़ पर पहुंच कर, शिव को लौट जाने के लिए कह कर अंतिम वार उसकी आंखों में कैसे देखा था !

फिर शांति का क्या हुआ, ये अनुमान की ही बात थी। अगले दिन एक-एक पल युग के समान बिताकर जब शिव सन्ध्या समय खोज-खबर लेने शांति के मुहल्ले में पहुंचा तो मालूम हुआ कि रात अन्धेरे में चौथी मंजिल से गिर पड़ने के कारण शांति

की मृत्यु हो चुकी थी। लोग उसको अर्थी लेकर गये हुए थे।

शिव अपने पिता के अन्याय के विरोध में या एक रात की गलती के प्रायश्चित में अपने जीवन को वैसे ही बिताता चला आ रहा था। बीस वर्षों की मोटी तह भी उस मूक स्मृति को धुंधला नहीं कर सकी थी।

एक भद्र समझदार स्त्री से रात में उसके घर चलने का अनुरोध सुनकर शिव ने विस्मय से पूछा—"आपके घर ?"

स्त्री ने आश्वासन दिया और बोली · "वहां आपको कोई परेशानी नहीं होगी। यहां बेंच पर बैठे हैं, वहां आराम रहेगा। पलंग, बिस्तर होगा। चाहे रात वहाँ ही रह जाइयेगा।"

शिव भद्रता के आवरण में छिपे जाल को भांप गया। उस में फंसने से इनकार करते हुए उसने कहा—"मेरे आराम की इतनी चिंता आपको क्यों है ? आपको उस से मतलब ?"

"मतलब क्या है !" स्त्री ने निस्संकोच उत्तर दिया, "आप चलेंगे आराम पायेंगे तो पांच-चार कुछ तो देंगे ही।"

"वेश्या !" पहचान कर शिव का मन ग्लानि से भर गया। यह जता देना भी आवश्यक था कि ऐसा धोखा चल नहीं सकता। शिव रूखे स्वर में बोला, "आप कह रही थीं कि आप के घर के लोग हैं, उन्हें इस में कुछ एतराज नहीं होगा ?"

"एतराज करने वाले होते तो रोना ही क्या था ?"

"क्यों, आप के पति ?" शिव ने पूछा।

"जिन्दा तो होंगे ही !" स्त्री ने कटुता से उत्तर दिया।

"क्यों; आप को मालूम नहीं ?" शिव को स्त्री के स्वर से विस्मय हुआ।

"क्या मालूम !" उदासी का सांस लेकर स्त्री बोली, "आप इतना पूछते हैं तो सुन लीजिये :—

"हमारे पति घर से लड़ कर हमें साथ लेकर नौकरी ढूंढ़ने बम्बई आये थे। यहां अपनी बहिन के यहां ठहरे थे। वे लोग पांच बरस से यहां हैं। हमारे घर वाले तीन महीने चक्कर लगा कर लौट गये। किराया काफी नहीं था इसलिये वे अकेले गये कि किराया भेज कर हमें बुला लेंगे। तब से तीन साल होने को आ रहे हैं। हमारे नन्दोई पांच बरस से रोजगार ढूंढ़ रहे हैं। सिनेमा में न जाने क्या करते हैं। दो-तीन महीने में कभी रात-बिरात आ जाते हैं। मकान का किराया भर वे दे जाते हैं। साफ कह देते हैं कि और अधिक उन के बस का नहीं। बरस के बरस ननद को एक बच्चा जरूर दे जाते हैं। इस से अधिक जिम्मेवारी उन की नहीं है। ये लड़की है, ननद के

चार बच्चे हैं। हम लोग क्या करें ? इस बदन के सिवाय हम लोगों के पास है क्या·····?"

शिव कह देना चाहता था कुछ नहीं है तो आबरू बचाने के लिये डूब मरने को इतना बड़ा ये समन्दर तो सामने है पर कह नहीं सका। खुद ही सोचने लगा, डूब ही मरेगी तो आबरू किस की बचायेगी ?

आबरू से जिन्दा रहने का उपाय क्या बताये·····। शिव मन की खिन्नता वश में करने के लिये बेंच पर से उठ गया।

——:o:——

ग़मी में खुशी

एक ज़माना था कि नवाब नबीरज़ा के मुर्ग गोमती किनारे हुसैनाबाद की पाली में लड़ते थे। उनके मुर्ग जीतने के उपलक्ष्य में जश्न मनाने जाते और दावतें होतीं इसलिये प्राय: उन्हीं के मुर्ग जीतते थे।

नबीरज़ा ने कई बरस से अपने मुर्ग दंगल में भेजना बन्द कर दिया था। नवाब साहब का कहना था कि छ: बरस पहले, न जाने कैसे, गोमती किनारे के जंगल से एक भेड़िया उनके मुहल्ले में घुस आया था। उनके मुर्ग 'कोहशिकन' की नज़र भेड़िये पर पड़ी। मुर्ग भेड़िया से भिड़ गया। भेड़िया तो शिकस्त खाकर भागा ही लेकिन 'कोहशिकन' के भी कुछ ज़ख्म आ गये। कोहशिकन को जहरबाद की बीमारी हो गयी और उसका इंतकाल हो गया। नवाब साहब ने कोहशिकन की तुर्बत पर हलफ उठा ली कि अब मुर्ग का शौक नहीं करेंगे। तभी से नवाब साहब के यहां जश्न और दावतें भी बन्द हो गयीं।

कुछ छिद्रान्वेषी ऐसे हैं जो हर बात और स्थान में छेद और ऐब खोज निकालते हैं। ऐसे लोगों ने दबी-दबी अफवाह उड़ा दी थी कि नवाब साहब की बेगम मीरसफदर की ड्योढ़ी के मरहूम नवाब साहब की रखैल की बेटी थी। स्वर्गीय नवाब साहब ने, नबीरज़ा को ड्योढ़ी में कुछ देखभाल करते रहने का काम सौंप कर उनकी माहवारी बांध दी थी। नबीरजा कभी-कभी ड्योढ़ी में हो आते और कभी अपने शौक में मसरूफ हो जाते तो न भी जा पाते। माहवारी बंधे गई थी सो मिलती रहती थी। नबीरजा सैंतीस बरस तक बिना कोई रोजगार किए, शरीफों जैसी जिन्दगी बिताते रहे तो देखने वालों को विश्वास हो गया कि वे नवाबी खानदान से हैं और नवाबी खानदान के वसीके में से हिस्सा पाते हैं।

जब तक नवाब नबीरजा की बेगम की वाल्दा जिन्दा रहीं, मीरसफदर की ड्योढ़ी से आये दिन कुछ न कुछ प्राप्त होता ही रहता था। उनका स्वर्गवास हो जाने पर भी

नबीरजा को माहवारी मिलती रही लेकिन अब नबीरजा केवल गुहर्रम की मजलिस में शरीक होने और दोनों ईदों पर मुबारिक कहने ही ड्योढ़ी में पहुंचते थे और दोनों ईदों पर ही ड्योढ़ी से उनके यहां भी हिस्सा पहुंचता था। प्राप्ति का कुछ और जरिया न रहा था।

मीरसफदर की ड्योढ़ी के नये नवाब साहब कुछ 'नये ख्यालात' के आदमी हैं। उन्होंने नये जामने की अंग्रेजी शिक्षा पायी है। उनके शौक भी नये ढंग के हैं। नये नवाब ने ड्योढ़ी में मर्दाने हिस्से का रंग-ढंग भी बदलवा दिया है। मसनदों और पीक-दानों के बजाय सोफा-सेट और ऐश-ट्रे आ गये हैं। महफिल के बजाय उन्हें क्लब का शौक है। ड्योढ़ी के खर्चे में भी उन्होंने कई परिवर्तन कर दिये हैं। इन परिवर्तनों में कई पुराने खर्चों के साथ नवाब मरहूम की रखैल के दामाद को दी जाने वाली माहवारी भी बंद कर दी गई।

जब छप्पन बरस की आयु में नबीरजा का वसीका बन्द हो गया तो वे किस लायक थे ? छोटी-छोटी दूकान कर सकने लायक पूंजी भी घर में न थी। छप्पन बरस की आयु तक 'नवाबी' कर चुकने के बाद वे नौकरी के लिये किसके आगे हाथ पसारते ? दुनियां के सामने कैसे स्वीकार कर लेते कि वे अब तक ड्योढ़ी के टुकड़ों पर पल रहे थे ? और करते भी तो क्या ?

नवाब साहब ने इस गहरी चोट को बहुत सम्भाला। चिन्ता की झलक उनके चेहरे पर प्रकट हो ही गयी तो लोगों को चिन्ता का वाजिब कारण बताना भी जरूरी था। मुहल्ले में उन्होंने कहा कि उनका हक निगल जाना मजाक नहीं है ; ड्योढ़ी की जायदाद में अपने हिस्से के लिये अदालत में दावा करके वे नये नवाब साहब को मजा चखा देंगे !

ड्योढ़ी के खिलाफ दो बरस तक भी दावा दायर न हो सका तो नबीरजा ने बेपरवाही प्रकट की कि अदालत जाना खानदानी लोगों को शोभा नहीं देता। एक समय उनके बुजुर्ग अदालत करते थे। अब वे खुद अदालत में जाकर दुहाई दें ?..... जिन्दगी भर के लिये अल्लाह का दिया बहुत है।

इस कठिनाई में नवाब साहब की चार संतानों में से एक-मात्र बचा हुआ नौजवान बेटा, हसनरज़ा डूबते हुये जहाज को छोड़ कर भाग जाने वाले चूहे की तरह, घर छोड़ कर कलकत्ता भागा और फिर लौटा ही नहीं।

ड्योढ़ी से नवाब साहब का वसीका बन्द हो जाने पर घर में, सास की मेहरबानी से गहनों, बर्तनों और दूसरी चीजों के रूप में जो कुछ सम्पत्ति थी उसी का भरोसा था; और भरोसा था मामा नसीमा का। नसीमा तीस बरस की आयु में दूसरी बार

विधवा हो गई तो अल्लाह का नाम लेकर सब्र कर लिया और नवाब साहब के यहां ख़िदमत कर पेट पालने लगी थी। नवाब साहब के यहां उसे चौंतीस बरस हो गये थे। नसीमा की माहवारी तनखा दो ही रुपये मुकर्रर हुई थी लेकिन इसके अलावा नबीरजा और बेगम उसे 'आपा' यानी बड़ी बहिन कह कर भी पुकारते थे।

नवाब साहब कभी कोई सौदा-सुलफ तक अपने हाथ से खरीद कर न लाये थे। अब बाजार में घर की चीजें बेचने जाना उनके लिये मौत से मुलाकात करने से बढ़ कर था। बेगम की समझदारी थी कि गैर जरूरी हो जाने वाली चीजें नसीमा के हाथ मकान के गली में खुलने वाले छोटे दरवाजे से बाजार में भिजवाकर गुजारा चला रही थीं। गुजारा भी क्या, मोटे अनाज की रोटी मिर्च और प्याज की चटनी से किसी तरह गले से उतार ली जाती थी। बेगम को सदा ही आज की अपेक्षा आने वाले कल की चिन्ता रहती थी।

नवाब साहब की बैठक में सदा गड़गड़ाता रहने वाला पेचवान भी गायब हो गया था। मेहमान बैठक में पेचवान न देख कर आश्चर्य प्रकट करते तो नवाब साहब सीने पर हाथ रख कर हंफनी के स्वर में उत्तर देते :—

"कहर ख़ुदा का इस नामुराद खांसी पर। हकीम ने सख्त परहेज के लिये ताक़ीद की है। पेचवान घर में हो तो तबीयत मचल ही जाती है। कल तबीयत झल्ला गई तो पेचवान उठा कर एक फकीर को दे डाला।"

ऐसा प्रसंग आने पर नबीरजा अपनी यादाश्त को कोसते हुये भीतर के दरवाजे की तरफ मुंह कर पुकार लेते—"लौंडिया से कह दो, फौरीं बाजार से एक डिबिया कैंची तो ले आये, चार-छै गिलौरी पान भी दे जाये।"

वह 'फौरीं' मेहमान के चलते वक्त तक भी पूरी न होती और नवाब साहब बुढ़िया मामा की कमजोर टांगों को कोसते रह जाते जिससे जल्दी चला ही नहीं जाता था। मामा तो पिछले बरस ही अल्लाह की प्यारी हो चुकी थी परन्तु नवाब साहब की मामा को आवाज देने की आदत बनी ही हुई थी।

नवाब नबीरजा और बेगम को अपने इकलौते बेटे हसन के घर छोड़ जाने से गम तो बेइंतहा हुआ मगर परेशानी उतनी न हुई, जितनी कि मामा के सहसा यह दुनियां छोड़ जाने से हुई। गरीबी और मुसीबत में झगड़े का एक और कारण बन गया कि घर की कोई चीज बाजार में बेच कर उससे आटा, नमक, मिर्च खरीद लाने कौन जाये ? नवाब साहब को शहर भर के लोग पहचानते थे। जिधर से निकलते, सामने से आदाब में हाथ उठने लगते थे; चाहे लोग उनकी पीठ पीछे होते ही मुस्करा भी देते हों। वे घर की चीज बाजार में बेंचने जाने और बनिये की दुकान से आटा उठा

कर लाने की अपेक्षा निराहार प्राण दे देने के लिये तैयार थे ।

एक दिन-रात का फाका हो चुका था । बेगम ने फिर अपनी लाचारी प्रकट की—"क्या फाके में जान जायगी ?" नबीरजा ने कमजोर आवाज में झुंझलाकर कहा, "हम कहते हैं, शरीफ खानदानों की बुरकापोश बेगमात को बाजार में कौन पहचान सकता है ? यहां तो आदमी क्या, हैवान तक पहिचान कर अदब से रास्ता छोड़ देते हैं । हम गठरी उठाकर बाजार में चलें ?···बुरका पहिन कर कोई पिछवाड़े के दरवाजे से गली में निकल जाये तो किसी को क्या मालूम हो सकता है ?···औरत की इज्जत तो उसके खाविन्द की इज्जत से होती है···"

निकाह के बाद बेगम जब से इस घर में आई थी, मुहल्ले के बाहर कदम नहीं रखा था । दो दिन के फाके के बाद उन्हें हार मान लेनी पड़ी । बुरके के भीतर आंसू बहाती हुई वे घर के पिछवाड़े के दरवाजे से गली में निकल कर बाजार से जरूरी सौदा ले आयीं ।

मामा नसीमा ने नवाब और बेगम साहिबा पर जिन्दगी भर एहसान ही किये थे । यहां तक कि चौंतीस बरस पहिले जो दो रुपया माहवार तनख्वाह नियत हुई थी, उसका भी बहुत बड़ा भाग छोड़ गयीं थीं; यों भी साथ तो सिर्फ सवाब ही जाता है । खैर, जाते-जाते मामा अपनी तनख्वाह की रकम के साथ एक अच्छी-खासी मुसीबत भी छोड़ गयी ।

दो बरस पहिले की बात है । एक चील पंजों में कुछ दबाये नवाब साहब की सूनी छत पर उतरी ही थी कि हसन ने उस पर एक ढेला चला दिया । चील उड़ी तो उसके पंजे में दबा मुर्गी का चूजा छूट गया । पीली-पीली चोंच और जिस्म पर कहीं-कहीं निकले रोएं । उस महीने भर के चूजे के प्रति निस्सन्तान नसीमा का हृदय उमड़ आया था । उसने चूजे को पानी पिलाया और अपने मुंह में कुचल कर रोटी खिलानी शुरू की । मुर्ग बढ़ने और पनपने लगा । सौ बातों में भूल-चूक हो जाने पर भी नसीमा अपने मुर्ग को रात में मरदूद बिल्ली से बचाये रखने के लिये टोकरी से ढांक देना न भूलती थी । उस मुर्ग का नाम भी उसने रखा था—'दिलपजीर' ।

हसन कभी-कभी मामा को परेशान करने के लिये कहने लगता—"खालाजान, अब तो दिलपजीर को बिल्कुल तैयार समझो; इसे हांडी के सुपुर्द कब कर रही हो ? कुछ दिनों में तो कड़ा पड़ जायगा ।"

"चश्मबद्दूर·····!" कह कर मामा लड़के को प्यार से डांट देती, "कहीं घर के जानवर के लिये ऐसा कहा जाता है ? और दिलपजीर क्या जानवर है ?" मामा कहती, "देखो·····" और दाना देने के ढंग से खाली हाथ ही बढ़ा कर पुकार लेती,

"आओ बेटे, दिलपजीर !"

मुर्ग सीना फुला कर उन की तरफ बढ़ आता ।

मामा कहती–"शक्ल मुर्ग की है तो क्या हुआ; है कि नहीं बिल्कुल आदमी जैसी समझ ! बात को कैसे समझता है !"

एकाध बार सचमुच ही हसन की जबान चटनी से रोटी खाते-खाते तंग आकर मुर्ग के लिये लपलपाने लगी । उस वक्त नवाब साहब ने लड़के को समझाया––"मुर्ग खाने का क्या यह तरीका है ? यह तो परिन्दे को जाया करना है । मुर्ग का गोश्त सेर भर हो तो उस के लिये पाव भर घी चाहिये और पाव भर दूसरा मसाला....." नवाब साहब पन्द्रह-बीस मसालों के नाम गिनाते चले गये ।

बेगम ने भी एकाध बार सुझाया कि ऐसा तैयार हो गया है कि बाजार में तीन-चार रुपये में बिक सकता है पर किसी को यह बात अच्छी नहीं लगी । दिलपजीर नवाब साहब के दरवाजे की शोभा था । जब वह बांकेपन से सीना बढ़ा कर, हरी झलकें लिये काले शरीर पर आग की लपट-सी लाल कलगी हिलाता हुआ चलता तो नवाब के सूख चुके होठों पर भी मुस्कान आ जाती ।

दिलपजीर की उठान देख कर गली-मुहल्ले के लोग नवाब साहब को सुना कर प्रशंसा में कहते–"नवाब साहब मुर्ग को जाने क्या खिलाते हैं ? शहर में मुर्ग तो घर-घर हैं पर दिलपजीर बेनजीर है.....।" फिर खुद ही जवाब देते, "भैया, जो लोग रूखी-सूखी खाकर अपना पेट भरते हैं, उन के यहां मुर्ग बेचारे भी क्या करें ? नवाब साहब के दस्तरखान की जूठन से तो अच्छे-भले कुनबे की गुजर हो सकती है । मुर्ग जब इतना खायगा तो पट्ठा क्यों नहीं बनेगा !"

नवाब साहब मूक समर्थन में मुस्करा देते । दिलपजीर मुहल्ले भर के दरवाजों का कूड़ा चुग-चुग कर अपनी उठान से नवाब साहब की प्रतिष्ठा बना रहा था ।

जुम्मेरात के दिन आसाढ़ के पानी का पहला छींटा पड़ गया था । गली-मुहल्ले के लोगों ने नवाब साहब को घेर लिया––"नवाब साहब, इस इतवार की पाली में दिलपजीर जरूर शामिल होगा ।"

नवाब साहब ने इन्कसारी से कहा––"नहीं-नहीं अभी क्या लड़ेगा; अभी बच्चा है । साल भर कुछ बादाम-पिस्ता खा ले तो अगले बरस सही ।" पर लोग माने नहीं । कल्लन मियां ने मुर्गे को बगल में उठा कर कहा, "वाह साहब, यह कैसे हो सकता है । मुहल्ले की इज्जत का सवाल है । दिलपजीर कोहशिकन के जांनशीं हैं । किस में दम है कि उन्हें पछाड़ दे ? ऐसा हो जाय तो हम लखनऊ को उजाड़ देंगे ।"

लोग नवाब साहब को घेर कर पाली में ले ही गये । साथ चलने वाले पहले से

ही दिलपजीर की फतह पर दावत का तकाजा करते जा रहे थे। नवाब साहब के मुहल्ले के लोगों के जतन से दिलपजीर ने मुकाबले के मुर्ग को पछाड़ दिया।

नवाब साहब लहूलूहान दिलपजीर को गोद में उठाये लौट रहे थे तो गर्व से उन का सीना उभर आया था। लोग दावत के वायदे की याद दिला रहे थे और नवाब साहब उदारता से उत्तर दे रहे थे—"जरूर, जरूर ! दिलपजीर से क्या दावत अच्छी है ! एक क्या, सौ दावतें लीजिये। अल्लाह दावत का मौका तो दे; दावत क्यों नहीं होगी ?" मकान पर पहुंचते-पहुंचते दावत के लिये एतवार का दिन भी मुकर्रर हो गया।

अपने मकान के दरवाजे के भीतर पांव रखते ही दिलपजीर की फतहयाबी की खुशी नवाब साहब के दिल में दब कर आह बन गयी। आंगन में पहुंच कर मुर्ग को गोद से पटक दिया और माथे पर बांह रख कर चुपचाप खाट पर पड़ गये।

बेगम ने उन्हें इस हालत में देखा तो अधीरता से पूछा—"खैर, हुआ क्या ?..... ऐसे क्यों हो रहे हो ? मुर्ग के जरा चोट आ गयी तो हो क्या गया ?"

"मर ही गया होता कमबख्त ?" नवाब साहब ने एक आह छोड़ी।

"नाउजबिल्ला, तोबा करो !.....हुआ क्या ? कहते क्यों नहीं ?" बेगम ने चिंता प्रकट की।

"होना क्या था ?" नवाब साहब झल्ला उठे, "शोहदों ने हल्ला कर दिया कि दिलपजीर जीत गया और फिर सब के सब पीछे पड़ गये कि दावत देनी होगी।"

"दावत !" बेगम की आंखों में पुतलियां फैल गयीं। ठोड़ी को उंगली के सहारे सम्भाल कर उन्होंने पूछा, "तो तुम ने क्या कहा ?"

"कहता क्या ?" नवाब साहब ने झल्ला कर बेबसी दिखायी, "कोई बदमाशों से घिर जाये तो कर क्या सकता है ? ऐसे मौके पर कोई शरीफ इन्सान क्या जवाब दे सकता है ?"

"दावत का वायदा कर आये ?...कब के लिये ?" बेगम ने घिघियाए हुए स्वर में पूछा।

नवाब साहब ने माथे पर हाथ मार कर उत्तर दिया—"इन्हीं कमबख्तों ने हल्ला कर दिया है कि दावत इसी इतवार को होगी।"

"तुम जानो।" गहरी सांस ले, फर्श पर हाथ टिका कर उठते हुए बेगम ने कहा, "हम जान दिये दे रहे हैं, किसी तरह इज्जत बचाये-बचाये आंख मूद लें; तुम शेखी में उघाड़ के रहोगे। कुछ सोचा तो होता। दो चार चीजें चांदी की घर में रह गयी हैं, लाकर दिये देती हूं। बर्तन के नाम ताम्बे-पीतल का एक कटोरा भी घर में नहीं है। हमारा तो यों ही दिल दहल रहा था कि जाने अल्लाह को क्या मंजूर है ? आखिरी

वक्त के लिये अफीम और कफन लेकर रख लूं। तुम लोगों को दावत दे आये !··· मालूम होता तो पहले ही अफीम खा लेती।"

अपनी इस कठिन परेशानी में वेगम की वेरुखी देखकर नवाव साहव ने वेवसी की झुंझलाहट में दीवार की ओर करवट ले ली और अपने आपको भाग्य के भंवर में डूव जाने के लिये आंखें मूंद लीं। वेगम भी दुर्भाग्य की चिन्ता में अपनी खाट पर जा लेटीं। चूल्हा ठंडा ही रहा।

दिलपजीर मानो अपने अपराध के लिये क्षमा मांगने के लिये कुड़कुड़ाता हुआ आंगन और कोठरियों में घूमता रहा। अंधेरा हो जाने पर वह इंतजार में था कि कोई उसे टोकरे के नीचे ढांक कर ऊपर से सिल रख कर, रात भर के लिये सुरक्षित कर दे। जब किसी ने उसकी सुध न ली तो वेचारा एक कोने में दुवक रहा।

आधी रात में वड़े जोर से फड़फड़ाहट हुई और दिलपजीर के दवे हुये गले से क्ड़ें ! क्ड़ें ! की आवाजों से मकान चीख उठा।

वेगम उठीं और 'हाय अल्ला !' पुकारती हुई आंगन की तरफ झपटीं।

नवाव साहव भी वदहवासी में 'या हुसेन !' पुकारते हुये आंगन की तरफ लपके। आधी रात की गहरी नींद के दवाव में आंखें ठीक से खुल न पायी थीं, एक दूसरे से टकरा गये। आपस में टकराते ही दोनों के मुंह से निकला—"हाय दिलपजीर !···विल्ली !"

नवाव लपक कर एक लकड़ी उठा लाये। वेगम ने चूल्हे पर रखी दियासलाई की डिविया टटोल कर कांपते हाथों से ढिवरी जला दी। विल्ली भाग गई थी। आंगन में हलाक पड़े दिलपजीर के पंख अव भी आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहे थे और उसकी गर्दन से टूट चुके, खून से लथपथ कलगी वाले सिर में गोल-गोल आंखें पथरा गई थीं।

कुछ पल तक नवाव और वेगम दोनों ही चुप रह गये। फिर वेगम रुआंसे गले से पुकार उठी—"हाय मेरा दिलपजीर !···अल्लाह का कहर नाजिर हो इस विल्ली पर, अव इस गमी में खुशी की दावत का क्या मौका ?" वेगम चिन्ता से मुक्त होकर खुले दिल से रो उठीं।

नवाव के हाथ से लकड़ी गिर पड़ी। उन्होंने रोती हुई वेगम को वांहों में सम्भाल लिया और खुद भी रो उठे—"या परवरदिगार, मेरे दिलपजीर की गमी में ही हम गुनहगारों के लिये निजात थी ?" और फिर दिलपजीर के वदन पर हाथ रख कर रोने लगे, "मेरे वेटे, जिन्दा रह कर तूने हमें इज्जत वख्शी और हमारी इज्जत वचाने के लिये तूने जान दे दी।"

कुछ देर नवाव और वेगम एक दूसरे के कंधे पर सिर रखे रोते रहे। एक दूसरे पर आया क्रोध आंसू वन कर वह गया—दिलपजीर की गमी में या इज्जत वच जाने की खुशी में?

तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं !

"अच्छा हमारा एक फोटो बना दीजिये।" माया ने सकुचाते हुये कह डाला।

निगम को बहुत अच्छा लगा—"वाह, जरूर।" उस ने आश्वासन दिया।

माया से इतनी बात कहला सकने में निगम का लगभग डेढ़ मास का समय और प्रयत्न लगा था। इस प्रयत्न का इतिहास बहुत रोचक न होने पर भी उस का महत्व है।

निगम और माया दोनों ही क्षय रोग की ऐसी आरम्भिक अवस्था में थे, जब सावधानी, उपचार और पथ्य से रोग का इलाज निश्चित रूप से हो सकता था।

रोग हो जाने की आशंका का कारण दोनों के लिये अलग-अलग था। माया को उस के पति ने दमे से पीड़ित, आयु से थके हुये, किसी भी काम के लिये अयोग्य, सम्बन्ध में अपने बड़े भाई की संरक्षता में इलाज के लिये भेजा था। इलाज के लिये दोनों एक ही जगह, भुवाली में थे। एक ही बंगले का आधा-आधा भाग लेकर रह रहे थे। इलाज एक ही डाक्टर का और लगभग एक ही जैसा था।

क्षय का रोग जितना भयंकर है, इलाज उस का उतना ही सीधा और सरल है। पूर्ण विश्राम, अच्छा भोजन और प्रसन्न रहना। डाक्टर साहब अपने रोगियों को स्पष्ट शब्दों में कहते रहते थे—"डाक्टर जादू से आप का इलाज नहीं कर सकता। इलाज आप के हाथ में है। डाक्टर केवल सुझाव देकर और दवा बता कर सहायता कर सकता है।"

इसी स्पष्टवादिता के सिलसिले में डाक्टर साहब माया को सहानुभूति भरी डांट भी सुनाते रहते थे। डाक्टर हर सातवें दिन अपने मरीज को तौल कर उन का वजन घटने-बढ़ने से उन के स्वास्थ्य में सुधार का अनुमान करते रहते थे। माया के वजन में कभी तोला भर भी बढ़ती न पाकर और अपने नुसखे असफल होते देख कर वे परेशानी में माया के जेठ से पूछते—"क्या बात है?···यह क्या खाती है?···कितना खाती

है ?·····कभी घूमने जाती है या नहीं ?···कभी हंसती-बोलती है ?·· वगैरह-वगैरह ।

माया के जेठ मुन्शी जी दमे और वृद्धावस्था की दुर्बलता के कारण रेंगते से स्वर में सब बातों के लिये असन्तोपजनक उत्तर देकर अपने समझाने का कुछ असर न होने की शिकायत कर देते ।

डाक्टर जिम्मेदारी के अधिकार से रोगी को डांटते—"क्या गुम-सुम बनी बैठी रहती हैं आप ? इलाज नहीं कराना है तो आगरा लौट जाइये !·····हमारी बदनामी कराने से आप का क्या फायदा ? इन्हें देखिये!" डाक्टर साहब निगम की ओर संकेत करते, "पन्द्रह दिन में तीन पौण्ड वजन बढ़ गया । आप डेढ़ महीने से यों ही पड़ी हैं ।····· अभी कुछ बिगड़ा नहीं है लेकिन आप का यही ढंग रहा तो रोग बढ़ जायगा·····।"

लौटते समय डाक्टर साहब माया के जेठ, उन के पड़ोसी निगम और निगम की मां 'चाची' सब से अपील कर जाते—"आप लोग इन्हें समझाइये·····कुछ खिलाइये-पिलाइये और हंसाइये !"

निगम साधारणतः स्वस्थ परिश्रमी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति है । वह चित्रकार है । पिछले वर्ष दिसम्बर में वह अमरीका में होने वाली एक प्रदर्शनी में भेजने के लिये कुछ चित्र बना रहा था । उसे इनफ्लूएंजा हो गया । बीमारी में विश्राम न करने के कारण उस का बुखार टिक गया । डाक्टरों के परामर्श से इलाज में जलवायु की सहायता लेने के लिये वह भुवाली चला गया । उसे तुरन्त ही लाभ हुआ । स्वस्थ हो जाने पर वह 'जरा और मृत्यु पर जीवन की विजय' का एक चित्र बनाना चाहता था । इसी भावना को वह अपने चारों ओर अनुभव कर रहा था । स्वास्थ्य और जीवन के प्रति माया के निरुत्साह से उस के मन में दर्द-सा होता था ।

माया के गुम-सुम और चुप रहने पर भी निगम को 'चाची' से यह मालूम हो गया था कि माया आगरे के एक समृद्ध कायस्थ वकील की तीसरी पत्नी है । चौबीस-पच्चीस वर्ष की आयु में भी उस की गोद सूनी रहने पर भी वह कानूनन वकील साहब के पांच बच्चों की मां है । माया के विवाह से पहिले वकील साहब की पहली पत्नी दो लड़कियां, एक लड़का और दूसरी पत्नी दो लड़कियां छोड़ कर एक दूसरी के बाद क्षय रोग से चल बसी थीं । जब वकील साहब की आयु प्रायः छियालीस वर्ष की थी, उन्होंने गृहस्थी संभालने और अपना अकेलापन दूर करने के लिये माया को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया था । माया के बीस वर्ष की हो जाने तक भी उस के पिता को लड़की के लिये कोई अच्छा वर न मिला था । शायद वे वकील साहब की दूसरी पत्नी की मृत्यु की ही प्रतीक्षा कर रहे थे ।

माया अपने जीवन का क्या भवितव्य समझ बैठी है, यह अनुमान कर लेना निगम

के लिये कठिन न था। उस का मन सहानुभूति से माया की ओर झुक गया। एक भरे यौवन का यों बरबाद हो जाना उसे अन्याय जान पड़ रहा था।

माया के लिये 'भरे यौवन' शब्द का प्रयोग केवल सहानुभूति से ही किया जा सकता था। आयु चौबीस-पच्चीस की ही थी। शरीर भी छरहरा और ढांचा सुडौल था। सलोने चेहरे पर नमक भी था परन्तु आंसुओं की नमी से सील कर बहा जा रहा था। आंखों के नीचे और गालों में गढ़े पड़े हुये थे, जैसे किसी अच्छे-खासे बने चित्र पर मैला पानी पड़ जाने से रंग बिगड़ जाये और केवल बाह्याकृति ही बची रहे।

निगम ने जिस नेकनीयती और मन की सफाई से माया की ओर आत्मीयता का आक्रमण किया था, उस की उपेक्षा और विरोध दोनों ही सम्भव न थे। हाथ में ताश की गड्डी फरफराते हुये वह चाची से घर और चौके का काम छुड़वा कर उन्हें जबर्दस्ती बरामदे में बुला लेता और फिर माया के जेठ को ललकारता 'आइये मुन्शी जी, दो-दो हाथ हो जायें।' इस के साथ ही माया से भी खेल में शामिल होने का अनुरोध करता। बिरादरी के नाते वह माया को निधड़क 'सक्सेना भाभी' कह कर सम्बोधन करता।

उस महफिल में त्रुप का ही खेल चलता। निगम बड़े जोश से 'वह मारा पापड़-वाले को !' चिल्ला कर गलत पत्ता चल देता और फिर अपनी भूल पर विस्मय में सिर खुजाते हुये 'अरे !' पुकार कर सब को हंसा देता।

माया के रक्तहीन ओंठ मुस्कराये बिना न रह सकते।

"निगम चुनौती देता—"आप हंसती हैं ? अच्छा अब की लीजिये !"

पांच-सात मिनिट में फिर कोई जबरदस्त दांव दिखाई पड़ जाता। पुकार उठता—"यह देखिये खरा खेल फरक्कावादी" और फिर वैसी ही भूल हो जाती।

ताश के खेल के अतिरिक्त निगम की आपबीती, हंसोड़ कहानियों का अक्षय भंडार भी माया को विस्मय से सुनने के लिये विवश कर देता था। माया की उदासी कुछ पल के लिये दूर हो जाती। वह कभी माया को कोई कहानी की पुस्तक, पत्रिका या चुने हुये चित्रों का अलबम ही दिल बहलाने के लिये दे देता। निगम ने इन चित्रों को अपने व्यवसाय में उपयोग के लिये चुना था। उन में अनेक देशी-विदेशी अर्धनग्न या नग्न चित्र भी थे। इन का उपयोग निगम अपने चित्रों में अंगों के अनुपात ठीक बना सकने के लिये करता था। माया को अलबम देते समय शिष्टाचार के विचार से ऐसे चित्र निकाल लेता था।

निगम की सहृदयता के प्रभाव से माया की चुप्पी कुछ-कुछ हिलने लगी थी पर वैसे ही जैसे बहुत दिन से उपयोग में न आने वाले तालाब पर जमी मोटी काई कभी

वायु के झोंके से फट तो जाती है परन्तु तुरन्त ही मिल भी जाती है। माया पुस्तकों या पत्रिकाओं को कितना पढ़ती और समझती थी, इस विषय की कभी कोई चर्चा न होती थी। हां, जब निगम बंगले के आंगन से दिखाई देने वाले दृश्यों के, माया के सामने खींचे हुए फोटो माया को दिखाता, तो स्तुति की मुस्कराहट जरूर माया के ओंठों पर आ जाती और वह दो चार शब्दों में फोटो की प्रशंसा भी कर देती।

माया को उत्साहित करने के लिये निगम कह देती—"आप भी सीख लीजिए न फोटो बनाना।·····बड़ा आसान है। कुछ करना थोड़े ही होता है। बस अच्छे दृश्य के सामने कैमरा खोल देना और बन्द कर देना; तसवीर तो आपसे आप बन जाती है।"

"क्या करूंगी ?···मुझे क्या करना है ?" माया टाल देती। निगम उसे जीवन के प्रति उदास न होने की नसीहत देने लगता। उस बात से ज़ान बचाने के लिए कोई दूसरी बात करने लगती, "यह मेरा नौकर बाजार जाता है तो वहीं सो रहता है। देखूं शायद आ गया हो।"

ऐसे ही एक दिन निगम माया को नये बनाये फोटो दिखा रहा था और समझा रहा था—"आदमी कुछ करता रहता है तो उदासी नहीं घेरती।"

माया कह बैठी—"अच्छा हमारा एक फोटो बना दीजिए।"

"जरूर !" निगम ने उत्साह से उत्तर दिया, "जब कहिये !"

"अरे जब हो; चाहे अभी बना दीजिए।"

अवसर की बात, उस समय निगम के पास फिल्म समाप्त हो चुकी थी। फिल्म समाप्त हो जाने का कारण बताकर उसने विश्वास दिलाया कि किसी दिन वह खुद या उसका नौकर करमसिंह नैनीताल जायेगा तो फिल्म आ जायगी, वह सबसे पहले माया का फोटो बना देगा।

माया का फोटो बना देने की बात होने के चौथे या पांचवें दिन करमसिंह कुछ सामान लेने नैनीताल गया था। लगभग दिन डूबने के समय लौटकर करमसिंह सामान और बचे हुए पैसे निगम को सहेज रहा था।

माया ने आ कर पूछ लिया—"भाई साहब, फिल्म मंगवा लिया है।"

"हां हां, क्यों नहीं !" फिल्म की बाबत भूल जाने की बात निगम स्वीकार न कर सका, "क्यों, क्या फोटो अभी खिचवाइयेगा ?" उसने उत्साह प्रकट किया।

"अभी बना दीजिए।" माया को भी एतराज न था।

"मुंशी जी को बुला लें ?" निगम ने सोचकर कहा।

"वे तो बाजार गये हैं देर में लौटेंगे !"

"आप भीं तो कपड़े बदलेंगी, तब तक रोशनी कम हो जायगी ।" निगम ने दूसरा बहाना सोचा ।

"कपड़ों से क्या है ?" उपेक्षा से माया ने उत्तर दिया, "कपड़े बदल कर क्या करना है ? ठीक तो हैं ?"

कोई और बहाना सोचते हुए निगम कैमरे में फिल्म लगा लाने के लिये भीतर चला गया । फोटो के सामान की आलमारी के सामने खड़ा वह सोच रहा था, माया का मन रखने के लिये बोले हुए झूठ को कैसे निबाहे ! उसकी उंगलिया उन चित्रों को पलट रही थीं जिन्हें उसने एलबम माया को देने से पहले निकाल लिया था । मन में एक बात कौंदकर उसके होठों पर मुस्कान आ गयी । कैमरे में फिल्म की जगह पर समा सकने लायक एक फोटो उसने चुन लिया ।

दो मिनट के बाद निगम कैमरे को तैयार हालत में लिये बाहर आया—"लीजिए कैमरा तो तैयार है !" उसने माया को सम्बोधन किया ।

"अच्छा ।" माया भी तैयार थी ।

"साड़ी नहीं बदली आपने ?" निगम ने पूछा ।

"ठीक है । क्या जरूरत है ?"

"आप कहती हैं न, साड़ी की तसवीर थोड़े ही बनवानी है ।" निगम मुस्कराया ।

"हां, साड़ी से क्या होगा ? जैसी हूं वैसी ही रहूंगी ।"

"आपके बैठने के लिये कुर्सी लाऊं ?"

"न, ऐसे ही ठीक है ।"

"जैसे मैं कहूं बैठ जाइये ।"

"अच्छा ।"

"बराम्दे में सामने से रोशनी आ रही है । यहां फर्श पर बैठ जाइये । दायीं बांह की टेक ले लीजिए ।···बायीं बांह को सामने ऐसे रहने दीजिए ।···गर्दन जरा ऊंची कीजिए···हां, सिर उधर कर लीजिए जैसे उस पेड़ की चोटी पर देख रही हों···हां ।"

माया निगम के निर्देशानुसार बैठ गयी ।

निगम ने चेतावनी दी—"अब आधा मिनिट बिल्कुल हिलियेगा नहीं ।" वह स्वयं दो गज परे फर्श पर उकड़ूं बैठकर कैमरे को माया की ओर साध रहा था । कैमरे की आंख खुलने का और बन्द होने का 'टिक' शब्द हुआ ।

"थैंक्यू, बस हो गया ।" निगम ने हंसकर कहा ।

"जाने कैसी बनेगी ?" माया फर्श से उठती हुई बोली ।

"अभी मालूम हो जायगा ।" निगम ने तटस्थता से उत्तर दिया ।

"अभी कैसे ?" माया ने विस्मय प्रकट किया, "एक-दो दिन तो लगते हैं बनाने में।"

"हां ऐसे कैमरे और फिल्म भी होते हैं।" निगम ने स्वीकार किया और बताया, "यह दूसरी तरह का कैमरा है।"

"यह कैसा है ?" माया का विस्मय बढ़ा।

"इस कैमरे से फोटो पांच मिनिट में आप ही तैयार हो जाती है।" निगम ने समझाया और अपनी कलाई पर घड़ी की ओर देखकर बोला, "अभी दो मिनिट ही हुए हैं।"

शेष तीन मिनिट माया उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रही। दो मिनिट और गुजर जाने पर निगम ने ठिठक कर कहा..."आधा मिनिट और ठहर जाना अच्छा है। जल्दी करने से कभी-कभी फोटो को हवा लग जाती है।" माया उत्सुकता से अपलक कैमरे की ओर देखती रही।

निगम कैमरे को ऐसी बेबाकी से माया की आंखों के सामने खोलने लगा कि सन्देह का कोई अवसर न रहे। जैसे जादूगर दर्शकों के सामने झाड़कर दिखा देने के बाद लपेट लिये रूमाल में से अद्‌भुत वस्तु निकालते समय आहिस्ते-आहिस्ते, दिखा-दिखा कर तह खोलता है। कैमरे का पिछला हिस्सा खुला। फोटो की सफेद पीठ दिखाई दी। निगम ने फोटो को स्वयं देखे बिना माया की ओर बढ़ा दिया।

माया का हाथ उत्सुकता से फोटो की ओर बढ़ गया था; परन्तु फोटो आंखों के सामने आते ही उसके हाथ से गिर गई, आंखें झपक गयीं और शरीर में थोड़ा बहुत जो भी रक्त था, पीले चेहरे पर खिंच आया।

"क्यों ?" भोले स्वर में निगम ने विस्मय प्रकट किया।

"यह हमारा फोटो है ?" माया आंखें न उठा सकी परन्तु होठों पर आई मुस्कान भी छिपी न रही।

निगम ने आरोप का विरोध किया—"आपके सामने ही तो फोटो लेकर कैमरा खोला है।"

"इसमें हमारे कपड़े कहां हैं ?" तनिक आंख उठाकर माया ने साहस किया। फोटो में माया की तरह छरहरे शरीर परन्तु बहुत सुन्दर अनुपात के अवयव की निरावरण युवती; दायीं बांह का सहारा लिये एक चट्टान पर बैठी, कहीं दूर देख रही थी।

"आपने ही तो कहा था।" निगम ने सफाई दी, "कि कपड़ों की फोटो थोड़े ही खिचवानी है।"

"ऐसा कहीं होता है ?" माया ने झेंप से अविश्वास प्रकट किया और उसका

चेहरा गंभीर हो गया ।

"ओहो !" निगम ने परेशानी प्रकट की, "आपने क्या एक्सरे नहीं देखा कभी ! ऐसा भी कैमरा होता है जिसमें शरीर के भीतर की हड्डी और नसें आ जाती हैं ।" अपना कैमरा दिखा कर वह कहता गया, "इस कैमरे से कपड़ों के भीतर से शरीर की फोटो आ जाती है । आप यदि पूरे कपड़ों समेत चाहती हैं तो मैं दूसरे कैमरे से वैसी ही फोटो खींच दूंगा ।"

माया ने एक बार फिर फोटो को देखने का प्रयत्न किया परन्तु देख न सकी । उसका चेहरा गंभीर हो गया । वह उठ कर अपने कमरे में चली गई ।

निगम भी कैमरा और चित्र सम्भाल कर अपने कमरे में चला आया । कुछ देर बाद वह चिन्ता में सिर झुकाये पछताने लगा, यह क्या कर बैठा ? माया हंसने की अपेक्षा चिढ़ गयी ।·····नाराज़ हो गयी । कहीं चाची से शिकायत न कर दे । ··· शिकायत कर सकती है या नहीं ? रात में नींद आ जाने तक यही विचार निगम को विक्षिप्त किये रहा और इस परेशानी के कारण नींद भी जरा देर से आयी ।

अगले दिन निगम का पश्चाताप और चिन्ता बढ़ गई । माया की नाराजगी अब साफ ही थी । प्रातः सूर्योदय के समय माया कुछ क्षण के लिये धूप में आती थी और निगम से नमस्कार और कुशल-क्षेम हो जाती थी । उस दिन माया दिखाई नहीं दी । निगम क्या करता ? तीर कमान से निकल चुका था । वह केवल अपने को ही समझा सकता था कि उसकी नीयत खराब न थी । उसने केवल हंसी की थी । हंसी दूर तक चली गयी ।

पश्चाताप के कारण निगम स्वयं भी चुप हो गया । उसकी चुप्पी चाची से छिपी न रही । उन्होंने पूछा—"जी तो अच्छा है !"

निगम ने एक किताब में ध्यान लग जाने का बहाना कर चाची को टाल दिया परन्तु उदासी न मिटा सका । वह किताब पढ़ने का बहाना किये दस बजे तक अपने कमरे में लेटा रहा ।

कमरे के बाहर से आवाज आई—"सुनिये"

आवाज पहचान कर निगम तड़प उठा—"आइये !"

माया दरवाजे में आ गई । कलफ की हुई खूब महीन धोती में से पीठ पर फैले गीले केश झलक रहे थे । लज्जा से आंखों की मुस्कान छिपाते हुये बोली—"भाई साहब, हमारा फोटो दे दीजिये ।"

निगम के मन से पश्चाताप और दुश्चिन्ता ऐसे उड़ गई जैसे फूंक मारने से आइने पर पड़ी धूल साफ हो जाती है ।

"कल वाला ?" जैसे याद करने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा।

"हां।" माया ने हामी भरी।

"वह तो हमने अपने पास रखने के लिये बनाया है।" निगम ने गंभीरता से विचार प्रकट किया।

"वाह तस्वीर तो हमारी है ?" माया ने अधिकार प्रकट किया।

"आपकी है ? कल आप कह रही थीं कि तस्वीर आपकी नहीं है।"

"दीजिये ! आपने ही तो खींची है।" माया ने आग्रह किया। उसकी आंखों में चमक थी और स्वर में कुछ मचल।

"अच्छा ले लीजिये !" निगम ने पराजय स्वीकार कर ली और तस्वीर मेज पर से उठा कर माया की ओर बढ़ा दी। माया ने दो तीन सेकेण्ड तक तस्वीर को तिरछी निगाहों से देखा और फिर लजाकर विरोध किया—"हमारी नहीं है तस्वीर ?"

"अभी आप मान रही थीं।" निगम ने उलझन प्रकट की, "क्यों ?"

"यह तो बहुत अच्छी है। हम ऐसी कहां हैं ?" माया की आंखें झुक गयीं और चेहरे पर लाली बढ़ गई।

माया के नये धुले केशों से सुगन्धित साबुन से सद्य-स्नान की सुवास आ रही थी। अपने रक्त में झनझनाहट अनुभव करके भी निगम ने कह दिया—"हैं तो !···नहीं तो तसवीर कैसे सुन्दर होती ?"

"सच कहते हैं ?" माया ने निगम की आंखों में सचाई भांपने के लिये देखा।

"हां, बिल्कुल सच।" निगम को माया की लज्जा और पुलक से अद्भुत रस मिल रहा था।

माया फिर फोटो की ओर देखती रही—"इसे फाड़ दीजिये !" आंखें चुराये उसने कहा !

"मैं तो इसे सम्भाल कर रखूंगा ?" निगम ने उत्तर दिया, "लखनऊ जाने पर याद आने पर इसे देखूंगा।"

माया ने निगम की आंखों में देखना चाहा पर देख न सकी। फोटो उसने ले लिया—"आपको फिर दे दूंगी।" फ़ोटो को हाथ में और हाथ को धोती में छिपाये वह अपने कमरे में चली गई।

माया के चले जाने पर निगम फिर लेट गया और सोचने लगा—पांच-सात मिनट में बात कहां से कहां पहुंच गई—जीवन का बिल्कुल दूसरा दृश्य उसकी आंखों के सामने आ गया।

अब तक निगम और माया में जो बात होती, सभी के सामने और खूब ऊंचे स्वर

में होती थी; परन्तु अब अकेले में करने लायक बात भी हो गयी। असाधारण और विशेष में ही तो सुख होता है। जिसे पाने में कठिनाई हो, वही पाने की इच्छा होती है। अकेले में और दूसरों के कान की पहुंच से परे होने पर निगम कह बैठता—"वह तस्वीर आपने लौटाई नहीं ?"

"हमारी तस्वीर है, हम क्यों दें ? पर अच्छी थोड़े ही है !" माया होंठ बिचका देती।

"हमें तो अच्छी लगती है !"

"आप तो यों ही कहते हैं !"

"अच्छा, किसी और को दिखाकर पूछ लो।

"धत्त !"

"क्यों ?"

"शरम नहीं आती, ऐसी तस्वीर ? बड़े वैसे हैं।" माया प्यार का क्रोध दिखाती।

निगम की नस-नस में बिजली दौड़ जाती। उसे माया के व्यवहार में परिवर्तन दिखाई दे रहा था। अब माया की आंखें दूसरी आंखों से बच कर निगम को ढूंढ़तीं। अवसर की खोज के लिये एक चुस्ती सी उसमें आगई थी। यह परिवर्तन केवल निगम को ही नहीं, चाची मुंशी जी को भी दिखाई दे रहा था और इस परिवर्तन का अकाट्य प्रमाण था डाक्टर साहब का मरीजों को तोलन वाला तराजू। तराजू ने पहले सप्ताह माया के वजन में आधा पौण्ड की बढ़ती दिखाई और दूसरे सप्ताह में एक पौण्ड। अब माया चाची के साथ निगम के साथ होते हुए भी, कुछ दूर घूमने जाने लगी। घूमते समय, ताश खेलते हुए अथवा बरामदे में चहल-कदमी करते समय निगम से एक बात कर सकने और आंखें चार कर सकने के अवसर की खोज के लिये माया के मस्तिष्क और शरीर में सदा रहस्य और तत्परता बनी रहती।

जुलाई का तीसरा सप्ताह आ गया था। भुवाली निरन्तर वर्षा से भीगी रहती थी। बादल, कोहरा और धुन्ध घरों में घुस आते थे। सीलन और सर्दी से चाची जोड़ों में दर्द की शिकायत करने लगी थीं। मुन्शी जी को भी दमें के दौरे अधिक आने लगे थे। बहुत से बीमार वर्षा से घबरा कर घर चले गये थे। माया और निगम को स्वास्थ्य में सुधार जान पड़ रहा था। निगम और माया के बंगले से प्रायः सौ गज ऊपर का बड़ा पीला बंगला और बायीं ओर के बंगले खाली हो गये।

डाक्टर की राय थी कि निगम अभी लखनऊ की गरमी में न जाय तो अच्छा ही है और माया को तो अभी रहना ही चाहिये था। उसकी अवस्था तो अभी सुधरने ही लगी थी।

आकाश में घटाटोप बादल बने रहने पर भी माया की आंखों में और चेहरे पर

उत्साह के कारण स्वास्थ्य की किरणें फैली रहतीं। माया की आंखों का साहस बढ़ता जा रहा था। जब-तब निगम से 'आंखें चार' हो जातीं। वह भी उनकी सुखद ऊष्णता का अनुभव किये बिना न रहता। शरीर में एक वेग और शक्ति का सुखद अनुभव होता। अपने अस्तित्व और शक्ति के लिये माया का निमंत्रण पाकर उसे ग्रहण करने, माया को पा लेने की अदमनीय इच्छा होती।

निगम को माया से शायद रोग की छूत लग जाने की आशंका थी। अपने को यों रोके रहने में भी संतोष था। जैसे तेज दौड़ने के लिए उतावले घोड़े की रास खींच कर रोके रहने में शक्ति, सुख और गर्व अनुभव होता है। निगम और माया दोनों जीवन की शक्ति के उफान की अनुभूति से उत्साहित रहने लगे थे।

वर्षा के कारण घूमने का अवसर कम हो गया था। निगम शरीर को कुछ स्फूर्ति देने के लिए छाता लेकर बाजार तक हो आता। माया उसकी आंखों में मुस्कराकर उलाहना देती—"आप तो अकेले ही घूम आते हैं। हमारा घूमना ही बन्द हो गया है। चाची कहीं जा नहीं पातीं।"

दिन भर पानी बरसता रहा। माया ने चाहा कि ताश की बैठक जमे परन्तु मुंशी जी के दमे के दौरे और 'चाची' के दर्द के कारण जम न पायी। माया ने कई बार बराम्दे के चक्कर लगाये। रहा न गया तो निगम के कमरे के दरवाजे पर जाकर पुकारा—"सुनिये !"

निगम ने स्वागत से मुस्कराकर कहा—"आइये।"

झुंझलाहट के स्वर में माया ने शिकायत की—"क्या करें भाई साहब ! कोई किताब ही दे दीजिये। बैठे-बैठे दिन नहीं कटता है।"

निगम ने पूछा—"कैसी पुस्तक चाहिए ? तस्वीरों वाली !"

"धत्त, बड़े वैसे हैं आप !" निगम ने पत्रिका उठा कर दे दी। उठती अंगड़ाई को दबा कर निगम की आंखों में मुस्कराती हुई माया पत्रिका लेकर लौट गयी।

माया कुछ देर बाद पत्रिका लौटाने आयी।

"पढ़ने में जी नहीं लगता भाई साहब !" मुस्कराकर उसने निगम की आंखों में देखा और फिर आंखें झुकाये और बहुत गहरे दबे स्वर में बोली, "कहीं घूमने नहीं चलते ?"

"चलो, कहां चलें ?" निगम ने वैसे ही स्वर में योग दिया।

"कहीं चलें; ऊपर का पीला बंगला तो अब खाली है।" माया के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी, "आप नीचे सड़क से घूमकर चले आइये।"

निगम के शरीर का रक्त बिजली का तार छू जाने से खौल उठा। इच्छा हुई

समीप खड़ी माया को बाहों में ले ले परन्तु स्थान और औचित्य का भी ख्याल आ गया। वह ठिठक गया। बोला—"अच्छा ?" शरीर एक नये वेग के रोमांच का अनुभव कर रहा था।

बादल घिरे हुये थे। निगम ने छतरी हाथ में ले ली और रसोई में बैठी चाची को पुकार कर कह दिया—"जरा बाजार तक घूम आऊं ?"

निगम अपने बंगले से सड़क पर उतर गया और घूमकर ऊपर के पील बंगले की ओर चढ़ गया। बंगले के अहाते में बरसात से अघाई लिली के फूल खूब खिले हुये थे। इससे कुछ दिन पहले बंगले में किरायेदारों के रहते समय निगम, चाची और माया शाम को कुछ दूर घूमने जाकर लौटते समय इस ओर से होकर जा चुके थे। पड़ोसियों के स्वास्थ्य के लिये शुभ कामना करके निगम यहां से फूल भी ले जाता था।

बंगला सूना था। बंगले के पिछवाड़े, जरा नीचे माली और नौकरों के लिए बनी छोटी-छोटी झोपड़ियों से धुंआं उठ रहा था। माली संध्या का खाना बना रहा होगा। चढ़ाई चढ़ते समय दम फूल जाने के कारण सांस लेने के लिये खड़े होकर निगम ने घूमकर पीछे की ओर देखा कि माया आती होगी। माया के साहस भरे प्रस्ताव से उसका रोम-रोम सिहर रहा था।

पगडंडी पर कुछ दिखाई न दिया। भीगी घास पर बादल का एक टुकड़ा मचल कर बैठ गया था और नीचे कुछ दिखाई न दे रहा था। बरामदे में कुछ आहट सी पाकर निगम ने देखा, माया सामने के बड़े कमरे के दरवाजे में उससे पहले ही से खड़ी मुस्करा रही थी। माया ने बांह उठाकर उसे आ जाने का संकेत किया। वह आगे बढ़ कर कमरे में चला गया।

एकान्त में माया के इतने निकट होने से उसका रक्त तेज हो गया और चेहरे पर चिनचिनाहट अनुभव होने लगी। माया का सीना भी, चढ़ाई पर तेजी से आने के कारण अभी तक लम्बे श्वासों से ऊपर-नीचे हो रहा था। उसके चेहरे पर ऐसी सुर्खी और सलोनापन था कि निगम देखता रह गया।

आकाश में घने बादल और धुन्ध से छाये रहने के कारण किवाड़ों और खिड़कियों के शीशों से केवल इतना प्रकाश आ रहा था कि शरीर की आकृति भर दिखाई दे सकती थी।

किरायेदारों के चल जाने के बाद सफेद निवाड़ से बुना खाली पलंग अंधेरे में उजला दिखाई दे रहा था और वार्निश की हुई कुर्सियां छाया जैसी लग रही थीं।

माया ने किवाड़ बन्द कर दिये। निगम ने एक घबराहट-सी अनुभव की; जैसे उत्साह में किसी खंदक को मामूली समझ कर कूद जाने के लिये तैयार हो जाये पर

समीप आकर खंदक की चौड़ाई से मन दहल जाये ! माया उसके बिल्कुल समीप आ गई थी ।

माया ने हाँफते हुये पूछा—"हमारा फोटो अच्छा था ? सच कहिये ?" और वह जैसे चढ़ाई की थकान से खड़ी न रह सकने के कारण धम से पलंग पर बैठ गई । अंधेरे में भी निगम को उसकी आंखों में चमक और चेहरे की आग्रहपूर्ण मुस्कान बिना देखे ही दिखाई दे रही थी ।

निगम का हृदय धक्-धक् कर रहा था । गले में उठ आये आवेग को निगल कर और समझने के लिये उसने उत्तर दिया—"है तो·····।"

"झूठ ! अब देखिये !" पांव पलंग पर समेटते हुए और पलंग के बीच सरक कर माया ने हांफ़ते हुए रुंधे स्वर में आग्रह किया । उसकी साड़ी का एक छोर कंधे से पलंग पर गिर गया था । अपने हाथ में लिया 'वह फोटो' पलंग पर, निगम के सामने डालते हुये उसने आग्रह किया—"ऐसा कहां है ? कब देखा आपने ?"

निगम के सिर में रक्त के हथौड़े की चोटें सी अनुभव हो रही थीं । उसके शरीर के सब स्नायु तन गये—क्या हो रहा है ? शरम ! ···बीमार लड़की !

"यहां आओ !" व्याकुलता से मचल कर माया ने निगम को पुकारा ।

माया अपनी कुर्ती को खोल देने के लिये खींच रही थी । काजों में फंसे बटन खिचे जा रहे थे और उसके स्तन चोंच उठाये तीतरों की तरह कुर्ती को फाड़ देना चाहते थे ।

बहुत जोर से दिये गये धक्के के विरुद्ध पांव जमाने का प्रयत्न कर निगम ने कड़े स्वर में उत्तर दिया—"पागल हो ! ···होश करो !"

माया का चेहरा तमतमा उठा । माया सन्न से निश्चल हो गई । पिघली हुई आंखें पथरा गयीं और गर्दन क्रोध में तन गई । श्वास और भी गहरा और तेज हो गया । आधा क्षण स्तब्ध रह कर क्रोध से निगम को घूर कर कड़े स्वर में फुंकार उठी—"तो तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ?"···

वह आंचल को सम्भाले बिना झपाटे से फर्श पर खड़ी हो गई । दोनों हाथों की मुट्ठियां बांधे. आंसुओं से डबडबाई आंखों में चिनगारियां भर कर उसने होंठ चबा कर धमकाया—"जाओ ! जाओ ! हट जाओ !"

निगम के पांव तले से धरती निकल गई । एक कंपकंपी सी आ गई । अवाक् रह गया ।

माया फिर पलंग पर गिर पड़ी । वह अपना सिर बांहों में छिपाकर औंधे मुंह लेट गई । उसकी पीठ बहुत जोर की रुलाई से हिल रही थी ।

निगम एक क्षण उसकी ओर देखता खड़ा रहा और फिर किवाड़ खोल कर तेज कदमों से चला गया।

निगम अगले दिन चाची के जोड़ों के दर्द की चिन्ता से लखनऊ लौट गया।

माया का ज्वर फिर बढ़ने लगा। डाक्टर ने सप्ताह भर उसके स्वास्थ्य में सुधार हो सकने की प्रतीक्षा की। ज्वर नहीं रुका।

डाक्टर ने राय दी—"बरसात की सर्दी और सील आपको माफिक नहीं बैठ रही। दो महीने का मौसम ठीक नहीं। आप आगरा लौट जाइये। सितम्बर के मध्य में लौट सकें तो लाभ हो सकता है.....।"

फिर माया के विषय में कोई समाचार नहीं मिला।

—:o:—

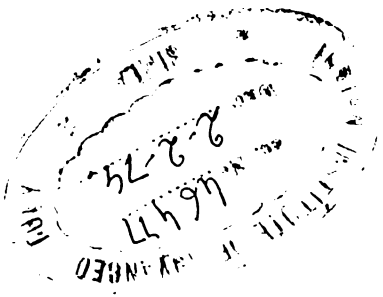

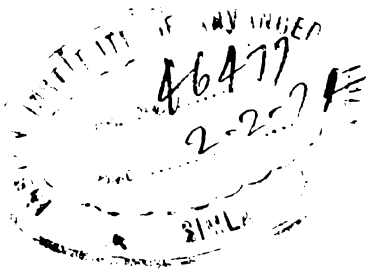

यशपाल साहित्य

कहानी संग्रह

अभिशप्त
वो दुनिया
ज्ञानदान
पिंजड़े की उड़ान
तक का तूफान
भस्मावृत्त चिन्गारी
फूलो का कुर्ता
धर्मयुद्ध
उत्तराधिकारी
चित्र का शीर्षक
तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ?
उत्तमी की मां
ओ भैरवी !
सच बोलने की भूल
खच्चर और आदमी
भूख के तीन दिन

उपन्यास

झूठासच–वतन और देश
झूठासच–देश का भविष्य
मनुष्य के रूप
पक्का कदम
देशद्रोही
दिव्या
गीता
दादा कामरेड
अमिता
जुलैखां
बारह घंटे
अप्सरा का शाप
क्यों फंसें !

नाटक

नशे-नशे की बात !

राजनैतिक निबन्ध

मार्क्सवाद
रामराज्य की कथा
गांधीवाद की शव परीक्षा

कथात्मक निबन्ध

देखा, [redacted] समझा !
बीबी जी कहती हैं
मेरा चेहरा रोबीला है

Library IIAS, Shimla
H 813.31 Y 26 T
00046477

हास्य निबन्ध

चक्कर क्लब
बात-बात में बात
न्याय का संघर्ष
जग का मुजरा

लोहे की दीवार के दोनों ओर
राहबीती